युगद्रष्टा प॰ पू॰ श्री गुरुजी के जन्मशताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में

अखिल भारतीय निबंध लेखन प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार – १ लाख रुपए • द्वितीय पुरस्कार – ५१ हजार रुपए

तृतीय पुरस्कार – २५ हजार रुपए • चतुर्थ पुरस्कार - ११ हजार रुपए

पंचम पुरस्कार – ५ हजार रुपए

साथ में और भी प्रतिभा प्रोत्साहन पुरस्कार

निम्नलिखित तीन विषयों में से किसी एक पर शोधपरक निबंध, शब्द सीमा ६००० से ८००० शब्द

१. २१वीं शताब्दी में श्रीगुरुजी के विचारों की प्रासंगिकता
Relevance of Sri Guruji's Thought for the 21st Century

२. संस्कृति एवं राष्ट्रीयता के संदर्भ में श्रीगुरुजी के विचार
Sri Guruji's Thoughts on Culture & Nationhood

३. राष्ट्रीय एकात्मता के समक्ष चुनौतियां—श्री गुरुजी के विचार
Challenges To National Integration - Sri Guruji's Thoughts

निबंध की भाषा – हिन्दी अथवा अंग्रेजी

योग्यता – पूर्व स्नातक से लेकर परास्नातक तक के विद्यार्थी एवं ३० वर्ष से कम आयु के शोध छात्र एवं छात्राएं (केवल विद्यार्थियों के लिए)

(सेवारत कर्मचारी, व्यवसायी व अन्य वर्ग की प्रविष्टियों पर विचार नहीं किया जाएगा)

निबंध प्राप्त होने की अंतिम तिथि - ३१ अक्टूबर, २००६

आयोजक – श्रीगुरुजी जन्मशताब्दी समारोह समिति

[केन्द्रीय कार्यालय – केशव कुञ्ज, देशबन्धु गुप्ता मार्ग, झण्डेवाला, नई दिल्ली - ११००५५]

अन्त :क्षेत्र

www.rss.org & www.sriguruji.org, E-mail: guruji_essay@yahoo.co.in

संयोजन - श्री गुरुजी जन्म शताब्दी समारोह समिति, नई दिल्ली

सहयोग - श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय तथा बड़ाबाजार लाइब्रेरी, कोलकाता

विजेताओं को नई दिल्ली में १८ फरवरी, २००७ को आयोजित श्रीगुरुजी जन्मशताब्दी समारोह के भव्य समापन कार्यक्रम में पुरस्कार प्रदान किए जाएंगे।

पूर्व भारत क्षेत्र के लिए

दक्षिण बंगाल, उड़ीसा, बिहार
श्रीगुरुजी जन्म शताब्दी समारोह समिति
२६, विधान सरणी, २ तल्ला
कोलकाता - ६००००६
फोन : ०३३-६४५०-४३३३

उत्तर बंगाल, आसाम, अण्डमान सहित पूरा पूर्वी भारत
शताब्दी सदन, दो मील,
सेवक रोड, सिलिगुड़ी-७३४ ००१ (प. बंगाल)

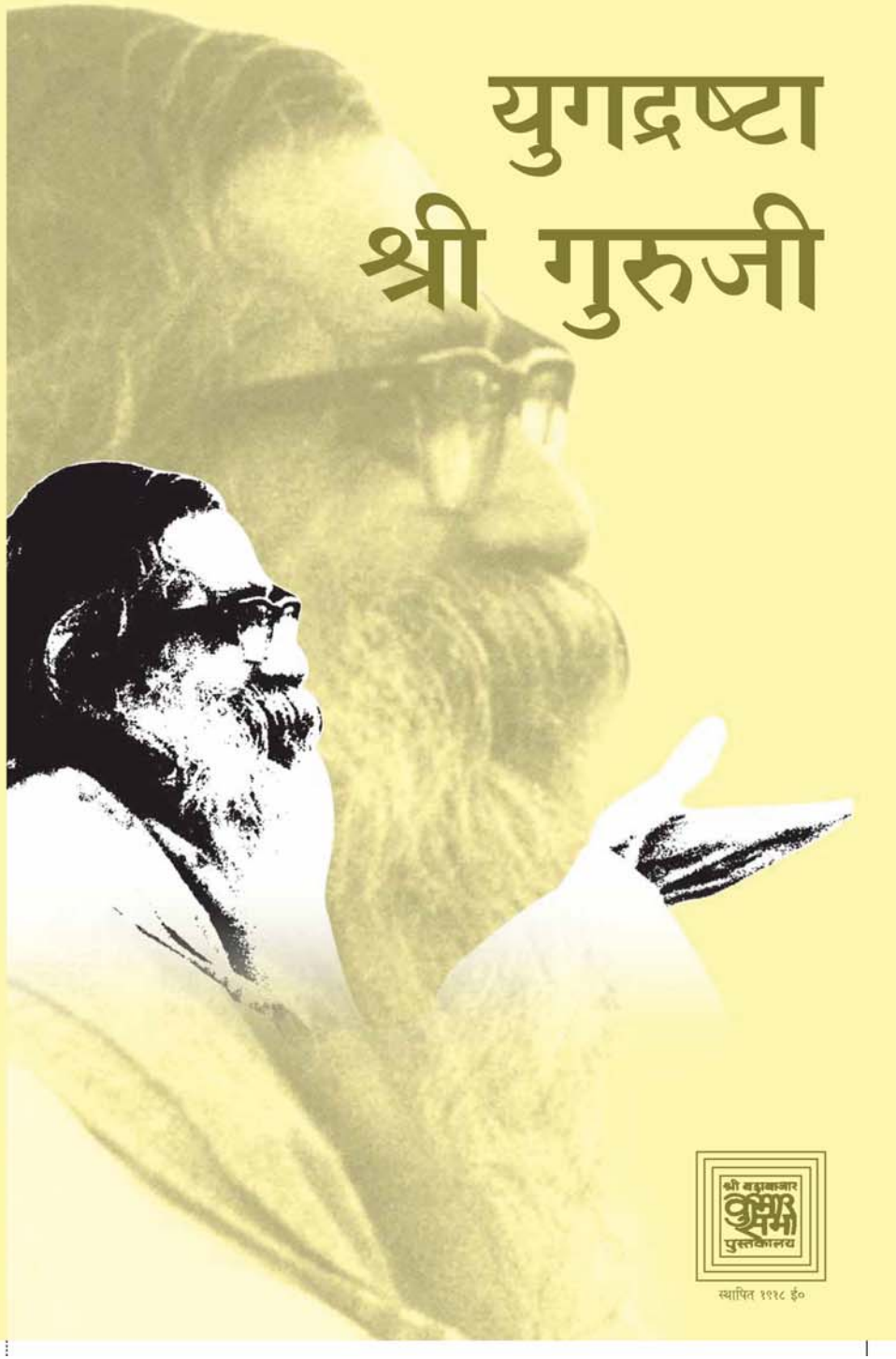

श्री बड़ाबाजार कुमार सभा पुस्तकालय
स्थापित १९१८ ई०

श्री गुरुजी का जन्म शताब्दी वर्ष

परम पूजनीय श्री माधव सदाशिवराव गोलवलकर, उपाख्य श्री गुरुजी, का यह जन्म शताब्दी वर्ष है। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक थे। आद्य सरसंघचालक प्रातःस्मरणीय डॉ केशव बलिराम हेडगेवार तथा पूजनीय श्री गुरुजी के द्वारा स्थापित आदर्शों से अनुप्राणित करोड़ों स्वयंसेवक एवं हिन्दुत्व में आस्था रखनेवाले लोग, न केवल भारत भूमि में, बल्कि पूरे विश्व में इस अवसर को अपना सौभाग्य मान कर जिस-जिस कार्य में वे कार्यरत हैं, उसे कई गुना विस्तार देने में जी-जान से लगे हैं।

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय गौरवान्वित है कि इन दोनों युग पुरुषों को उपयोगी कार्य एवं कार्यक्रमों के माध्यम से श्रद्धांजलि देने का सार्थक प्रयास हुआ है। डॉक्टर साहब की जन्म शताब्दी, सन् १९८९, पर वार्षिक डॉ हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान की संरचना हुई, एक सुरुचिपूर्ण एवं तथ्यात्मक स्मारिका का प्रकाशन हुआ तथा कई कार्यक्रम अनुष्ठित हुए। सम्मान आयोजनों की श्रृंखला अभी तक बनी हुई है। इसके माध्यम से भारतमाता की अनेक सुयोग्य संतानों का एवं उनके कार्यों का सम्मान किया जा सका है और वृहत् समाज तक उनके यश को प्रेरणा के रूप में पहुंचाया जा सका है।

प० पू० श्री गुरुजी की जन्म शताब्दी के अवसर पर अनेक कार्यक्रमों की परिकल्पना में प्रथम कार्यक्रम का आयोजन ५ मार्च २००६ को हुआ। वृहत् महाजाति सदन के भव्य सभागृह में आयोजन हुआ तथा श्री गुरुजी के विभिन्न आयामों की परिचयात्मक पुस्तक 'श्री गुरुजी' का प्रकाशन हुआ। उसी अवसर पर यह सुझाव भी गृहीत हुआ कि श्री गुरुजी की दृष्टि पर आधारित विषयों पर एक अखिल भारतीय निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया जाये। कोलकाता की अन्यतम संस्थाओं - श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय तथा बड़ाबाजार लाइब्रेरी ने इस प्रतियोगिता के लिए आवश्यक संसाधनों तथा प्रकाशन आदि का दायित्व सहर्ष स्वीकार किया। डॉ मुरली मनोहर जोशी ने तथा 'श्री गुरुजी जन्म शताब्दी समारोह समिति' ने इसे आगे बढ़ाया। निबंध प्रतियोगिता का विवरण पुस्तक के अंतिम पृष्ठ पर अंकित है।

श्री गुरुजी की जन्म शताब्दी के अवसर पर पुस्तकालय ने 'श्री गुरुजी - ए विज़नरी' (Shri Guruji - A Visionary), अंग्रेजी पुस्तक का प्रकाशन किया है और साथ ही हिन्दी पुस्तक - 'युगद्रष्टा श्री गुरुजी' आपके हाथों में है। श्री गुरुजी के चिंतन के कतिपय आयामों, उनकी कार्यशैली, उनकी अद्‌भुत् प्रज्ञा तथा उनके जीवन के कुछ प्रसंगों में झांक भर लेने का यह छोटा-सा प्रयास है। जिज्ञासु के लिए श्री गुरुजी का वृहत् साहित्य भंडार उपलब्ध है। कुछ संदर्भ-ग्रन्थों की सूची अन्य पृष्ठ पर अंकित है।

श्री गुरुजी ने प्रयाण के पूर्व एक समय कहा था कि आप सब कार्य करते रहना, चिंता मत करना, मैं जहां भी रहूंगा, मेरी दृष्टि यहां पर रहेगी। उस महान संत की दृष्टि के योग्य हम बन सकें, प्रभु से यही विनती है।

- संपादक

शत-शत वन्दन!

शत-शत वन्दन! शत-शत प्रणाम !!
तीर्थों की पवित्रता जिसके आचरण में
पर्वों और व्रतों की महनीयता अन्तःकरण में
सादगी, संस्कृति और सभ्यता जिसके अलंकरण में
क्रान्ति और प्रगतिशीलता जिसके युग-चरण में
मैंने मनुष्य की आकृति में, उस देवता को
देखा है, सुना है, पढ़ा है, गुना है !
मठ-रहित संन्यासी,
जन-जन के कल्याण के लिये निरन्तर प्रवासी
जमदग्नि, वशिष्ठ, पराशर की शेष यादगार
दीप्त मुखमण्डल पर धार्मिक तेज निरहंकार
दुर्बल शरीर और देश-जाति-धर्म की रक्षा का दुःसहभार
आँखों की किरणों में असीम स्नेह और प्यार
आँधियों में भी जिसका दीप जगमगाता रहा
पत्थरों को तोड़ जो निर्झर की तरह गाता रहा
किसी तरु के नीचे विश्राम, हराम!
जिसकी जिन्दगी चलती रही अविराम
उस परम तपस्वी गुरुजी के चरणों में
शत-शत वन्दन! शत-शत प्रणाम !!

- श्यामनारायण पाण्डेय

युगद्रष्टा श्री गुरुजी

- विमल लाठ

श्री गुरुजी जिस युग मे पैदा हुए, पले, बढ़े और एक विशाल संगठन का दायित्व विवेकपूर्वक वहन किया, वह युग प्रबल झंझावातों का युग था। दो-दो विश्व युद्ध, भारत का विभाजन, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर अनेक विपत्तियां, ये सब उनके अनुभव के विषय थे। इन सब आपत्तियों - विपत्तियों को झेलते हुए, अपने सहयोगी कार्यकर्ताओं का मनोबल बनाये रखते हुए, अडिग रहकर पवित्रता और शुचिता से अपने आदर्शों की रक्षा करते हुए आगे बढ़ते जाना और साथ ही साथ अपने प्रत्येक कार्य के माध्यम से आगे आनेवाली पीढ़ी के लिए मानक तय करते जाना, किसी साधारण मनुष्य का काम नहीं हो सकता। प्रज्ञा वह बुद्धि है जो भविष्य को भी देखती है। परम पूजनीय श्री गुरुजी केवल संगठक या संत ही नहीं थे, वे प्रज्ञा-पुरुष थे। अतएव बीसवीं सदी के उनके कर्मरत जीवन को, (जन्म : १९ फरवरी १९०६ - प्रयाण : ५ जून १९७३) हम जब इक्कीसवीं सदी में कुछ दूरी से देख पाते हैं, तो विस्मय होता ही है।

उनके सामने घटित होनेवाली हर घटना का विश्लेषण यों लगता है जैसे आज के संदर्भ में भी वह उतना ही समीचीन है। मनुष्य, समाज, राष्ट्र और विश्व के सभी पहलुओं पर उनका स्पष्ट चिंतन रहता था। सौभाग्य से उनके व्याख्यान, पत्राचार, साक्षात्कार तथा लेखन का बहुत बड़ा भाग सुरक्षित है, जो हमारा पाथेय बनता है। हममें से बहुत से स्वयंसेवकों को उनको नजदीक से देखने और सुनने का सुअवसर मिला है। उनकी वह सहज सरल हंसी और मुक्त अट्टहास मानों कल की ही बात हो। यदि वे सहज - सरल नहीं होते तो इतना बड़ा दायित्व कैसे वहन कर पाते ? सहजता के पीछे का गांभीर्य, हंसी के पीछे समाज की व्यथा, बहुत कुछ कर सकने के प्रयास के पीछे समाज की शिथिलता, ये सब वस्तुस्थितियां थीं जिनसे उन्हें रोज दो-चार होना पड़ता था। तब भी यह श्री गुरुजी का ही जीवट था जो 'चरैवेति - चरैवेति' के सिद्धान्त को प्रकट आकार देता था। चाहे राजनीति की बात हो या संतों - धर्माचार्यों की, जाति-पांति की गुटबाजी हो या युवाओं के मसले, जो बात उन्होंने उस वक्त बेबाकी से कही, वह आज के लिए भी उतनी ही सही है क्योंकि उनके परिणाम तो आंखों के सामने ही हैं। उदाहरण के लिए आज शिक्षा संस्थानों में पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का सवाल लोगों के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बना हुआ है, कुछ इसके लिए तोड़फोड़ कर रहे हैं तो दूसरे पक्षवाले स्वयं को आग लगा कर आत्महत्या कर रहे हैं। नवम्बर १९७२ में थाणे (महाराष्ट्र) में एक भेंट वार्ता के दौरान अखिल भारतीय वदर समाज के अध्यक्ष ने श्री गुरुजी के सामने आरक्षण के पक्ष में तर्क दिये थे तो उन्होंने इस समस्या का समाधान बतलाया था कि अपने को पिछड़ा समाज कहनेवालों के बच्चों को स्वयं आगे होकर अपनी निपुणता बढ़ानी

चाहिये। इस वर्ष यदि ३५ प्रतिशत नम्बर मिलने पर पास हुआ जा सकता है तो अगले वर्ष के लिए उन्हें स्वयं कहना चाहिये कि पासमार्क ४० प्रतिशत हों। इस प्रकार स्वयं प्रगतिशील होने पर आरक्षण की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। प्रश्नकर्ता ने स्वीकार किया कि इस नजरिये से उन लोगों ने कभी सोचा ही नहीं था और न किसी ने उनको बतलाया था। उनके लिए यह बिल्कुल नया मार्ग था। वे संतुष्ट होकर लौटे। श्री गुरुजी का बतलाया हुआ मार्ग क्या आज के लिए भी उतना ही तर्कसंगत नहीं है ?

जो जटिलतायें या विषमताएं पिछली सदी में थीं, वे ही आज भी किसी-न-किसी रूप में हैं। आर्थिक प्रश्न हों अथवा राजनैतिक, यह जो कुछ घटित हो रहा है, चाहे राजनेताओं का भ्रष्टाचार हो या भ्रष्टाचारियों की राजनीति, इन आपदाओं के बारे में श्री गुरुजी ने अपने समय में आनेवाले समय को साफ-साफ देख लिया था तथा इसके लिए विश्लेषण भी उपस्थित कर दिये थे। उनका साहित्य पढ़ जाइये, सारे उत्तर मिल जायेंगे। हिन्दू जीवन की परिभाषा के अंतर्गत सभी प्रश्न हल हो सकते हैं, केवल आवश्यकता है कि कोई उन्हें दत्तचित्त होकर पढ़े तो। '*पुरुषार्थचतुष्टय*' के शास्त्रीय निर्देश मंत्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा पालन करने के लिए ही दिये गये थे। श्री गुरुजी ने स्पष्ट कहा था कि '*अर्थ*' और '*काम*' की नदी को '*धर्म*' और '*मोक्ष*' के दो मजबूत किनारों के बीच ही बहना होगा। यदि ये किनारे कमजोर और पिलपिले हों तो नदी उनको तोड़कर चारों तरफ तबाही ही पैदा करेगी। एकदम सीधा और सरल विश्लेषण दिया था श्री गुरुजी ने, लोगों ने सुना और गुना नहीं तो तबाही के अनगिनत उदाहरण आने लगे अपने सामने। श्री गुरुजी ने कहा कि जिन्होंने पश्चिम की तरह केवल भौतिक जगत और उसकी चकाचौंध को ही जीवन का लक्ष्य मान लिया तथा अपने आर्ष ऋषियों के बताये अंतर्मन की उपलब्धि के रास्ते को ही नहीं पहचाना, उनके उद्धार का उपाय क्या है। और आजकल तो *धर्म* शब्द ही कइयों को मानो काटने दौड़ता है। लेकिन श्री गुरुजी कभी निराश नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जितनी भी अनीति का राज्य हो जाये, एक दिन यह *हिन्दूराष्ट्र* पुनः अपनी पूरी अस्मिता के साथ लोककल्याण के लिए उठ खड़ा होगा और उसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भूमिका होगी कि उसने *धर्म* के बीज को बचा कर रखा होगा।

पू० डॉक्टर हेडगेवार ने कोलकाता के नेशनल मेडिकल कॉलेज से डाक्टरी की परीक्षा पास की लेकिन नागपुर लौटकर उन्होंने आदमी के शरीर की डाक्टरी नहीं की। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना कर मनुष्य के अंतर्मन की चिकित्सा का बेड़ा उठाया। पू० श्री गुरुजी ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से एम. एस. सी. पास की, वहीं कुछ समय के लिए प्राध्यापक बने, मद्रास में प्राणिशास्त्र के विषय में शोधकार्य करने गये, नागपुर लौटकर वकालत पास की, बंगाल में आकर सारगाछी आश्रम में पूज्य ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई स्वामी अखंडानन्दजी की सेवा में रहे, उनसे दीक्षा भी ली, लेकिन उन्होंने भी नागपुर

लौट कर संघकार्य करना ही निश्चित किया तथा मनुष्य के अंतर्मन को पुष्ट करने का डाक्टरजी द्वारा दिया गया सरकार्यवाह का दायित्व स्वीकार किया। सन् १९४० में डॉक्टरजी के प्रयाण के बाद उनकी इच्छानुसार वे सरसंघचालक बने। उस समय उनकी आयु थी ३४ वर्ष। कैसा मणिकांचन संयोग!

डाक्टरजी का लगाया गया पौधा श्री गुरुजी ने अपने पुरुषार्थ से सींचा। ३३ वर्षों तक इस महान राष्ट्र को बलिष्ठ बनाने में, इसकी एक-एक समस्या से जूझने में, कार्यकर्ताओं की सुसंगठित मालिका गूंथने में उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी। वे कहते थे कि कोई भी 'इज़्म', चाहे वो कम्यूनिज़्म हो या कैपिटलिज़्म, इस देश की प्रकृति के साथ मेल नहीं खाता। हमें तो अपना रास्ता साफ दिखायी देता है, वह रास्ता है - *सनातन धर्म* - चाहो तो इसे हिन्दुइज़्म कह लो। जो सत्य है, सनातन है, वह कभी मरेगा नहीं। दुनिया में कितने ही इज़्म आये और गये, और भी न जाने कितने आयेंगे और चले जायेंगे। सनातन धर्म की राह पर चलकर ही हमारा राष्ट्र बलवान बनेगा। उनकी भविष्यवाणी सच हुई। साम्यवाद को दुनिया ने नकार दिया। पूंजीवाद भी अपनी मौत मर रहा है। एक में सरकार के नाम से समाज, व्यक्ति की स्वतन्त्रता को नकारता है, उसकी तौहीन करता है; जैसा हमने रूस और चीन में देखा, लाखों निरीहों की जघन्य हत्याएं की गईं, ऑपरेशन थियेटर से शल्य चिकित्सा के बीच से विरोधियों को उठा ले जाकर हत्यायें की गयी (सोल्झेनित्सिन), लाखों युवाओं को कतारबद्ध कर गोली मार दी गयी (टिआनमेन स्क्वायर), तो दूसरी ओर सारी पूंजी और साधन अपने हाथ में करने के लिए कुछेक व्यक्ति समाज को दारिद्र्य और भूखमरी में डाल देते दिखायी दिये। श्री गुरुजी प्रश्न करते हैं कि ये कैसी आर्थिक व्यवस्थायें हैं जहां मनुष्य, मनुष्य का दुश्मन बना होता है? इसके विपरीत हमारी आर्थिक व्यवस्था का लक्ष्य निर्धारित किया गया है - 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'। पूंजीवाद कहता है - *अधिक से अधिक लोगों का भला*। हमारा अर्थशास्त्र कहता है - *सभी का भला*। भौतिक साधन तो जुटाने होंगे ही, उनके अभाव में मनुष्य सुखी कैसे होगा, लेकिन इनका आधार होगा *धर्म* और लक्ष्य होगा *मोक्ष्य*। मनुष्य संतुष्ट होगा तभी सुखी भी होगा। इस संतुष्टि में अधिक से अधिक पाने की लिप्सा नहीं है। श्री गुरुजी कहते हैं कि हमारे यहां त्याग को पूजा गया है, वैभव को नहीं।

दुर्भाग्य से देश के विभाजन के बाद मिली स्वतंत्रता के बाद हिन्दू जीवन मूल्यों की जानबूझकर उपेक्षा की गई। पश्चिम का 'मॉडल' पं० नेहरू के सर पर भूत की तरह सवार था। सरदार पटेल की असमय मृत्यु ने पं० नेहरू को निरंकुश शासक बना दिया था। प्रख्यात फ्रांसीसी लेखक, फ्रांस्वा गोतिये अपनी सद्य प्रकाशित पुस्तक 'इंडियाज़ सेल्फ डिनायल' में लिखते हैं, "नेहरू ने स्वतंत्रता के बाद केवल ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ही नहीं वरन् पूरी न्यायिक, संवैधानिक और कानूनी व्यवस्था को भी आंख मूंदकर लागू किया। - - - धर्म के कानून को छोड़कर भारत के लिए सच्चा

लोकतंत्र क्या हो सकता है? यही है वह कानून जिसे हमें पुनर्स्थापित करना होगा, यही है वह कानून जिसे एक सच्चे लोकतांत्रिक भारत की नींव होना होगा। इस विषय में श्री अरविंद ने कहा है,"कहा गया है कि लोकतन्त्र मनुष्य के अधिकारों पर आधारित होता है; इसका उत्तर दिया गया है कि इसके स्थान पर उसे कर्तव्यों पर आधारित होना चाहिये, किन्तु अधिकार और कर्तव्य दोनों ही योरोपीय विचार हैं। भारत की अवधारणा धर्म की है जिसमें अधिकार और कर्तव्य अपना वह कृत्रिम विरोध खो देते हैं, जो संसार के उस दृष्टिकोण की उपज है जो स्वार्थ को कार्य का मूल मानता है, और अपनी गहन और शाश्वत एकता को प्राप्त कर लेते हैं। धर्म लोकतन्त्र की आधारशिला है, यह एशिया को पहचानना ही होगा क्योंकि इसीमें एशिया और योरोप की अंतरात्मा के बीच का अंतर निहित है।" (इंडियाज़ रिबर्थ, श्री अरविंद, पृष्ठ ३९)। महर्षि अरविंद, स्वामी विवेकानन्द, समर्थ गुरु रामदास आदि संत ही तो पू० श्री गुरुजी के भावविश्व में विराजते थे। इन सभी ने सनातन धर्म को कितनी सरलता से व्याख्यायित किया था और भारतमाता को उच्च सिंहासन पर पुनः विराजने का स्वप्न भी तो इन सब का सांझा ही था।

श्री गुरुजी ने अपने गांवों के आर्थिक स्वावलंबन की बात कही। बड़े-बड़े कल कारखाने और उनमें विदेशों से लाये गये पुराने मशीन पुर्जे आर्थिक स्वातंत्र्य नहीं ला सकते। माता धरती की ऊर्जा को नष्ट कर देनेवाली खाद के बदले पशुधन से प्राप्त खाद के वे पक्षधर थे। आज हम देख रहे हैं कि 'ओर्गैनिक' नाम से गोबर की खाद से उगाये गये सब्जी-फलों को लोग पसंद करते हैं और ज्यादा पैसे देकर खरीद रहे हैं, विदेशों में भी। श्री गुरुजी ने कहा कि अपने अर्थशास्त्र में '*बलिवैश्वदेव*' यज्ञ का उल्लेख है, अर्थात् पहले भूखे पेटवाले व्यक्ति को खिलाओ, तब दूसरे लोग भोजन लें। जहां अन्न की कमी है, वहां मुष्टिभिक्षा करके भूखे लोगों का पेट भरना बतलाया गया है। समाज का कोई भी व्यक्ति भूखा न रहे।

श्री गुरुजी ने अपने संगठन के लिए लक्ष्य रखा - भारतमाता के लिए *परमवैभव* का। उन्होंने कहा कि कमजोर का कोई साथी नहीं होता, बलवान की सब पूजा करते हैं। इसलिये हमारा यह *हिन्दूराष्ट्र* अपने सभी अंगभूत घटकों को साथ लेकर इतना बलवान बने कि उसकी ओर कोई वक्रदृष्टि से कभी न देख सके। इस हेतु उन्होंने अपने जीवनकाल में ही १५ से अधिक आयामों को छूनेवाली अखिल भारतीय संस्थाओं की स्थापना की। इसका आशय था कि भारत में किसी भी पेशे या वृत्ति से जुड़ा कोई भी व्यक्ति भारतमाता की सेवा से वंचित न रहे तथा अपने-अपने बल को एक संगठित राष्ट्रबल के रूप में प्रवृत्त करे।

श्री गुरुजी के विचार आज केवल प्रासंगिक ही नहीं हैं, उन पर चिंतन-मनन करना और व्यवहार में उतारना ही राष्ट्र की एवं विश्व शान्ति की सही दिशा है। □

श्री गुरुजी : विश्व शान्ति और राष्ट्र-अवधारणा

- मा. गो. वैद्य

मनुष्य का मन और बुद्धि जैसी-जैसी उन्नत और विकसित होती है, वह अपने व्यक्तिगत जीवन से ऊपर उठकर औरों के हित की बात सोचने लगता है। फिर परिवार की बात सोचता है, पड़ोस की बात सोचता है, अपने समाज की बात सोचता है, सम्पूर्ण मानवजाति की भी बात सोचता है। इस विकास और उदारता की कोई सीमा नहीं है।

यदि इस प्रकार की एकात्म जगत् की उपस्थिति आप चाहते हैं, तो अनेक पण्डितों का मानना है कि राष्ट्र की अवधारणा इसमें बाधक है। अतः कम्युनिज्म राष्ट्र की अवधारणा में सिद्धान्ततः विश्वास नहीं करता। दुनिया के मजदूरों को एक समझना है, तो स्वाभाविकतः राष्ट्र की सीमाएँ बाधक होंगी ही। इस्लाम भी एक 'उम्मा' की अवधारणा लेकर चलता है। 'उम्मा' यानी एक बन्धुसंघ है।

इस्लाम के पैगम्बर ने अपनी मृत्यु के पूर्व दिये हुए एक प्रकार से अन्तिम उपदेश में कहा है - ''हर मुसलमान दूसरे मुसलमान का बन्धु है। सब मुसलमान समान हैं। सब मिलकर एक उम्मा हैं।'' यह कोई कोरा उपदेश नहीं था। उसका पालन भी हुआ। अतः वंश, भाषा, देश, राष्ट्र की सारी भावनाएँ 'उम्मा' की तुलना में गौण हो गयी। ''सारी भूमि उल्लाह की है और सब लोग अल्लाह के बन्दे हैं।'' नहीं हैं, तो वैसे बनने चाहिए। केवल उनको ही ऐसे बनाना चाहिए, यहाँ तक यह उपदेश सीमित नहीं है। दुनिया भी ''दार-उल-इस्लाम बने'' यह चाह है।

राष्ट्र - एक संकीर्णता?

यूरोप के इतिहास ने भी बताया है कि 'राष्ट्र' एक संकीर्ण भावना है। दो विश्वयुद्धों का कारण राष्ट्रवाद है। जर्मन लोगों के अतिवादी राष्ट्रभाव के कारण ही दो भीषण मानव संहारक युद्ध हुए। इस्लाम का अर्थ यदि 'शान्ति' हो, तो भी इस्लामी लोगों ने इस्लाम का विस्तार करने के लिए तलवार का यानी हिंसा का सहारा लिया। ईसा मसीह का 'सर्मन ऑन दॅ माउण्ट' इस नाम से जो प्रसिद्ध उपदेश है, उसमें तो शान्ति और सहिष्णुता का परमोच्च आदर्श निहित है।

ईसा मसीह कहते हैं - ''शान्ति बनानेवालों का कल्याण हो। उन्हें भगवान् की सन्तान कहा जायेगा। प्रतिशोध नहीं लेना चाहिए। किसी ने तुम्हारे बायें गाल पर एक तमाचा मार दिया, तो दूसरा गाल सामने करो। किसी ने तुम्हारा कोट माँगा, तो अंगरक्खा भी दे दो। आपको कहा गया होगा कि अपने पड़ोसी से प्यार करो और शत्रुओं से नफरत, किन्तु मैं कहता हूँ कि शत्रुओं से भी प्यार करो। जो तुम्हें

शाप देते हैं उन्हें भी आशीर्वाद दो। जो तुम्हारा द्वेष करते हैं, उनके साथ अच्छा व्यवहार करो। जो तुमसे तिरस्कारपूर्वक व्यवहार करते हैं, तुम्हें कष्ट देते हैं, उनके लिए भगवान से प्रार्थना करो।''

इस उदात्त उपदेश को माननेवालों ने ही केवल बीस-इक्कीस वर्षों के अन्तराल में दो महाभीषण युद्ध दुनिया पर थोपे और आज केवल मानव का ही नहीं, सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश करने की क्षमतावाले अणु बम किसी के पास अत्यन्त प्रचुर मात्रा में है, तो ईसा मसीह को माननेवाले इन्हीं राष्ट्रों के पास हैं। अतः कई विचारक मानते हैं कि राष्ट्रवाद का विचार संकीर्ण है। विचार आखिर मानवता का करना चाहिए। सम्पूर्ण जगत् का एक राष्ट्र बनना चाहिए। एक राज्य बनना चाहिए।

हिन्दुत्व की सोच

इस परिप्रेक्ष्य में हमें देखना है कि क्या 'हिन्दू राष्ट्र' की अवधारणा भी इसी प्रकार संकीर्ण होने के कारण अन्तिमतः मानवसंहार के लिए कारणीभूत होगी? क्या वह जगत् की एकता संजोकर जगत् में शान्ति ला सकेगी?

इन प्रश्नों के सही उत्तर के लिए हमें श्री गुरुजी ने जो समय-समय पर मार्गदर्शन किया, उसकी ओर अपनी दृष्टि और अपनी सोच को मोड़ने की आवश्यकता है। श्रीगुरुजी प्रश्न खड़ा करते हैं कि जगत की एकता का भाव कैसे निर्माण होगा? और उसका उत्तर देते हैं कि किसी कृत्रिम संगठन से यह भाव निर्माण नहीं हो सकता।

बीसवीं शताब्दी का अनुभव बताते हुए वे कहते हैं कि जगत् में शान्ति बनी रहे, इस हेतु प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् 'लीग ऑफ नेशन्स' की स्थापना हुई; किन्तु वह असफल रहा। द्वितीय युद्ध के पश्चात् 'युनाइटेड नेशन्स' की स्थापना हुईः किन्तु वह भी राष्ट्रों के बीच के संघर्ष को नहीं टाल सका। यह सही है कि अब तक तीसरा विश्वयुद्ध शुरू नहीं हुआ; किन्तु वह कभी भी शुरू हो सकता है।

इस सम्बन्ध में श्री गुरुजी कहते हैं - 'लीग ऑफ नेशन्स हो या युनाइटेड नेशन्स - इनकी स्थापना जगत् में भ्रातृभाव निर्माण करने के लिए नहीं हुई। शक्तिशाली राष्ट्रों ने अपने राष्ट्र के संकीर्ण लाभ के लिए उन संस्थाओं का उपयोग किया। मानव जाति के कल्याण की सद्भावना लेकर बड़े राष्ट्र एकत्र नहीं आये, उल्टे अपने राजनीतिक स्वार्थ और शक्ति के लिए वे अधिकाधिक व्यावर्तक (Exclusive) बनते गये और दुनिया में अपना प्रभाव जमाने की अपनी आकांक्षा को बढ़ाते गये।''

तात्पर्य यह है कि कृत्रिम रीति से एकता नहीं बन सकती। भय के आधार पर वह टिक नहीं सकती। उस के लिए चाहिए विश्व का एकात्म - दर्शन। यह एकात्म - दर्शन ही वैश्विक दर्शन हो सकता है। यह दर्शन श्री गुरुजी बताते हैं - ''भौतिकता पर आधारित नहीं होगा।''

साम्यवाद इसलिए विफल रहा कि उसने केवल भौतिक सुख की, मनुष्य के भोजन, वस्त्र और निवास की ही बात सोची। कम्युनिस्ट रूस ने सत्तर वर्षों तक राज्य की पूरी शक्ति लगाकर इस हेतु प्रयास किये; किन्तु उसका आज क्या हाल है, यह सब जानते हैं। वह अपने लोगों को भी भौतिक सुख देने में असमर्थ रहा। जग के कल्याण की तो बात ही दूर रही। राष्ट्र, राज्य, मजहब या सम्प्रदाय विशेष - सब यही बताते हैं कि हमें मानव का सुख अभिप्रेत है; किन्तु, उनकी सुख की कल्पना बहिरंग मात्र में सीमित है।

हिन्दुत्व की विशेषता यह है कि उसने अन्तरंग का विचार किया। उसने बताया कि सब के भीतर एक ही आत्मतत्त्व है। इस आत्मतत्त्व को नाम आप कुछ भी दें। ईश्वर कहें, शून्य कहें, आत्मा कहें या कोई और नाम दें; किन्तु वह सबके अन्दर विद्यमान है। उस आत्मतत्त्व के साथ जब तक मनुष्य अपने को एकरूप नहीं बना पाता, तब तक वह विश्वैक्य की बात भी नहीं कर सकता।

श्री गुरुजी कहते हैं - ''आज तक के सारे प्रयत्न उन वादों पर निर्भर रहे, जो भौतिकवाद से उपजे। हमने विश्व की एकता का और सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का विचार क्यों करना चाहिए तथा एक व्यक्ति के दुःख को देखकर दूसरे को दुःखी क्यों होना चाहिए? इन प्रश्नों का उत्तर भौतिकवाद नहीं दे सकता। भौतिकवाद की दृष्टि से तो हम सब अलग-अलग हैं, हम अपने में स्वयं पूर्ण हैं। हम मात्र भौतिक अस्तित्व हैं। हममें परस्पर प्रेम क्यों और कैसे उत्पन्न होगा? अपने स्वार्थ को नियन्त्रित करके, दूसरों के कल्याण के लिए वह क्यों प्रवृत्त होगा?

हिन्दू चिन्तकों ने भौतिकवाद की सीमाओं को लाँघकर अपनी सोच आगे प्रवृत्त की और सब के अन्दर एक अन्तिम सत्य है, इसकी अनुभूति की। इस अन्तरतम सत्य को उन्होंने पहचाना, उसका दर्शन किया और विश्व की तरफ एकात्म दृष्टि से देखने को सिखाया। मुझमें जो 'अहं' है, वही विश्व के सभी मानवों में भी विद्यमान है। इसका ज्ञान होगा, तो ही अन्य के आनन्द से मैं आनन्दी और अन्य दुःख से मैं दुःखी होऊंगा। सब के अन्दर एक ही आत्मतत्त्व है, इस विश्वास और अनुभूति के आधार ने ही हमें विश्वैक्य और विश्वबन्धुत्व की ओर प्रेरित किया।

यह समान आन्तरिक एकता का ज्ञान ही विश्व की एकता और मानव-कल्याण के लिए कारण बन सकता है। जिस प्रमाण में यह एकात्मभाव जाग्रत रहेगा, सभी क्रियाकलापों में अनुस्यूत रहेगा, उतने ही प्रमाण में विश्व में एकता और सद्‌भाव बना रहेगा।

एकरूपता नहीं, सामञ्जस्य

हिन्दुओं ने एक एकात्मता की भावना केवल बुद्धिगम्य नहीं रखी। उसको

आचरण का अंग बना दिया और उसी आचरण के साथ हिन्दू विचारक, प्रशासक, वैज्ञानिक,, व्यापारी, दार्शनिक और कलावन्त सारी दुनिया में गये और वहाँ-वहाँ के लोगों की अस्मिता और विशेषताओं को न मिटाते हुए उनके व्यक्तिगत, और सामाजिक जीवन को उन्नत किया। तलवार के भरोसे यह काम होनेवाला नहीं था। हिन्दुत्व तलवार लेकर बार गया ही नहीं, ज्ञान और उसके अनुरूप आचरण लेकर गया था। हिन्दुत्व की इस भावना को भी श्री गुरुजी ने उजागर किया कि व्यक्ति की जिस प्रकार एक विशेषता होती है, वैसी ही राष्ट्र की भी होती है। विश्व-शान्ति के लिए राष्ट्र की अस्मिता को, उसकी विशेष पहचान को मिटाने की आवश्यकता नहीं। वे कहते हैं - ''हमारे सामने प्रश्न खड़ा होगा कि यह आन्तरिक एकात्मता का आधार कैसे प्रकट होगा? क्या उन सबको एकरूप बनाना होगा? नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं।

हमें सब विशेषताओं में समन्वय और सामञ्जस्य (harmony) बिठाना होगा। हम विशेषताओं को मिटाने की सोचेंगे, तो सृष्टि का सारा नैसर्गिक सौन्दर्य ही नष्ट कर देंगे। हर एक व्यक्ति की और राष्ट्र की वैशिष्ट्यपूर्ण प्रतिभा रहती है। उसके विकास के लिए मुक्त वातावरण चाहिए। आवश्यकता इतनी मात्र है कि विकास के प्रयासों में हमें मानवजाति की एकात्मता का भान नहीं छूटना चाहिए।''

श्री गुरुजी का यह दर्शन आज के संघर्ष भरे विश्व को शान्ति का मार्ग बतानेवाला है; क्योंकि वह जिस प्रकार विधिवता की रक्षा करनेवाला है, उसी प्रकार एकात्मता का ज्ञान और भान भी देनेवाला है। आवश्यकता केवल इतनी है कि जिन हिन्दुओं का यह विश्वात्म दर्शन है, उन हिन्दुओं को उसका अभिमान धारण कर, विश्व के सामने एक शक्तिसम्पन्न, आत्मविश्वासपूर्ण और अपने जागतिक दायित्व का बोध अन्तःकरण में धारण कर खड़े होना है। □

उनका चिन्तन सतत गतिमान था

- डॉ. देवेन्द्र स्वरूप

१९७० के अन्तिम दिनों की बात है। आनेवाले गणतन्त्र दिवस पर हमने 'पाञ्चजन्य' का 'दरिद्रनारायण विशेषांक' निकालने का मन बनाया। उसके लिए एक विषय-सूची तैयार की। पता चला, श्री गुरुजी दिल्ली आये हुए हैं। उनका मार्गदर्शन पाने की इच्छा से मैं विशेषांक की विषय-सूची लेकर उन्हें मिलने गया। वे पटेलनगर में डॉ. इन्द्रपाल के निवास पर ठहरे थे। जब मैं पहुंचा, तो लाला हंसराज जी भी उनके पास बैठे थे।

श्री गुरुजी ने विषय - सूची ध्यान से देखी। बोले, रूपरेखा तो अच्छी बनायी है, पर क्या इन विषयों के लेखक तुम्हारे पास है? मैंने कहा, यही समस्या आ रही है। वे अपनी परिचित शैली में हँसे। बोले, यही तो संकट है। दीनदयाल के जाने के बाद चिन्तन-प्रक्रिया रुक गयी है। मैं जनसंघवालों को अध्ययन करने को कहता हूँ, तो वे करते हैं कि हम पढ़ाई में समय लगायें या फील्ड में जाकर मतदाता तैयार करें -मानो अध्ययन चिन्तन और फील्डवर्क में विरोध हो।

इतने में सायंकाल शाखा का समय हो गया। श्री गुरुजी संघ-स्थान की ओर चल दिये। मैं भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। रास्ते में मैंने एक प्रश्न, जो काफी समय से मेरे मन में घूम रहा था, साहस बटोरकर श्री गुरुजी से पूछ लिया। मैंने कहा कि ऐसा क्यों है कि संघ का स्वयंसेवक मुस्लिम प्रश्न पर जितनी जल्दी उत्तेजित और उद्वेलित होता है, उतनी जल्दी गरीबी के प्रश्न पर नहीं होता?''

मैं डर रहा था कि ऐसे अटपटे प्रश्न पर श्री गुरुजी की क्या प्रतिक्रिया होगी; किन्तु श्री गुरुजी ने बहुत ही शान्त स्वर में कहा कि इसका कारण संघ के जन्मकाल की परिस्थितियों में है। उन दिनों खिलाफत-आन्दोलन के बाद मुस्लिम आक्रामकता से हिन्दू समाज परेशान था। शहरों और कस्बों में जहाँ भी संघ शाखाएँ प्रारम्भ हुई, उन्हें मुस्लिम आतंक और गुण्डागर्दी का सामना करना पड़ा। इसी कारण आर्य समाज और हिन्दू महासभा का भी सहयोग मिला। स्वाभाविक ही उस समय मुस्लिम विरोधी मानसिकता विकसित हुई; पर अब वह बदल रही है। अपना स्वयंसेवक अब समाज के पिछड़े वर्गों एवं वनवासियों के दूरस्थ क्षेत्रों में कार्य करने के लिए भी आगे आ रहा है।

श्री गुरुजी के गतिमान चिन्तन का अनुभव मुझे इसके पहले भी हो चुका था। १९६१ में लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राचीन भारतीय इतिहास में एम. ए. की परीक्षा पास करके मैंने ''प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता की प्रक्रिया और उसके मूलतत्व'' जैसे विषय पर शोध करने का निश्चय किया। इसके लिए राष्ट्रीयता की परिभाषा

सम्बन्धी पाश्चात्य लेखन का अध्ययन किया। तब मुझे पता चला कि पश्चिम में राष्ट्रीयता की परिभाषा सम्बन्धी विचार उन्नीसवीं शताब्दी से बहुत आगे बढ़ चुका है।

उन्नीसवीं शताब्दी में वे क्षेत्र, राज्य, भाषा, नस्ल और धर्म की पाँच एकताओं को राष्ट्रीयता के अनिवार्य कारक मानते थे; पर प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् उन्होंने उन पाँच एकताओं का आग्रह छोड़ दिया। हेस कोहन, सी. जे. एच. हेयज जैसे विद्वान कहने लगे कि राष्ट्रीयता जैसी सामूहिक चेतना के आविर्भाव के लिए केवल दो आधारभूत कारण पर्याप्त हैं - एक, भूमि के प्रति आत्मीयता अर्थात् देशभक्ति और दूसरा समान ऐतिहासिक या सांस्कृतिक परम्परा का अभिमान।

संघ के स्वयंसेवक के नाते तब तक मेरे मस्तिष्क में राष्ट्रीयता की वही परिभाषा बैठी हुई थी, जो श्री गुरुजी के नाम से प्रकाशित थी और 'वी एण्ड अवर नेशनहुड डिफाइण्ड' नामक पुस्तक भी मैंने पढ़ी थी। १९६२ में श्री गुरुजी प्रयाग में संघ-शिक्षा-वर्ग के लिए आये हुए थे। मैं इस विषय पर चर्चा के लिए प्रयाग पहुँच गया।

श्री गुरुजी के सामने मैंने जब यह विषय उठाया, तो उन्होंने तुरन्त कहा कि 'वी' को भूल जाओ। उसमें प्रस्तुत व्याख्या उन्नीसवीं शताब्दी के योरोपीय चिन्तन पर आधारित है और अवैज्ञानिक है। मैं स्वयं उससे आगे बढ़ चुका हूँ और तुमने जिन पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत नयी व्याख्या बतायी है, वही भारत पर लागू होती है।

श्री गुरुजी की यह स्वीकारोक्ति सुनकर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। अपने घिसे-पिटे, काल-बाह्य विचारों के प्रति विद्वानों के अहंकारजन्य दुराग्रह के अनेक उदाहरण मेरे सामने थे। अतः श्री गुरुजी के गतिमान चिन्तन और अपने ही द्वारा प्रस्तुत विचारों को त्यागने का साहस व निरहंकारिता का साक्षात्कार मेरे लिए विस्मयकारी था।

- 'राष्ट्रधर्म' से साभार उद्धृत

श्री गुरुजी और शैक्षणिक प्रबोधन

हिन्दू पृथ्वी पर सबसे पुरातन राष्ट्र है और यह संस्कृति एवं परिष्कार में अतुलनीय रहा है। परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसी पुरातन व महान जाति के पुत्र विदेशी कुप्रचार के शिकार बन गये हैं और अपने पुरातन इतिहास व धरोहर को भूल बैठे हैं। कोई भी समाज अपने अतीत से सम्बन्ध विच्छेद कर अपने उज्जवल भविष्य के निर्माण की आशा नहीं कर सकता।

मुख्य अवरोध

दिल्ली प्रवास के दौरान एक बार श्री मोहम्मद करीम छागल से मेरी भेंट हुई। वे उस समय केन्द्रीय शिक्षा मंत्री थे। वे रूस के प्रवास से कुछ ही समय पूर्व लौटे थे। उन्होंने वहाँ के अनुभवों का वर्णन करते हुए बताया कि वहाँ के युवक जीवन के हर क्षेत्र में अपनी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने की महत्वाकांक्षा से अनुप्राणित और अध्ययन के प्रति अति गम्भीर लगते थे। उन्होंने जिज्ञासावश मुझसे पूछा ''अच्छा, मुझे यह समझ में नहीं आता कि हमारे युवकों में क्या कमी है? क्यों वे हड़ताल, अनुशासनहीनता और उपद्रवों में संलग्न हैं? परन्तु मुझे आभास होता है कि आपके संगठन में युवक अनुशासित एवं समर्पित हैं। तो क्या आप हमारे नवयुवकों की समस्या का कोई निदान प्रस्तुत कर सकते हैं?

मैंने प्रति-प्रश्न किया, ''आपका कथन ठीक है, किन्तु क्या आपने विद्यार्थियों के समक्ष कोई महान आदर्श प्रस्तुत किया है?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''प्रेरणास्पद उत्तम आदर्श के अभाव में हम छात्रों से यह अपेक्षा कैसे कर सकते हैं कि वे जीवन के मूल्यों के प्रति समर्पण तथा अनुशासन को आत्मसात् कर लें। यही ऐसा उच्चादर्शवाद है, जिससे प्रेरित होकर वे अपने उग्र आवेग को संयमित कर अपनी उफनती उर्जा को राष्ट्र निर्माण की रचनात्मक दिशा में मोड़ सकते हैं। इस राष्ट्रीय आदर्शवाद को हृदयंगम करने का कार्य विद्यालयों व महाविद्यालयों में हमारे सत्य इतिहास के पठन से प्रारम्भ होगा। हमें अपने बच्चों को सिखाना होगा कि वे जिस धरती पर जन्मे हैं, उसकी विरासत महान है और उनके पूर्वजों ने भौतिक व आध्यात्मिक उपलब्धियों के उच्चतम मानदण्ड स्थापित किये हैं। तभी उन्हें उच्चतर आदर्शों को प्राप्त करने के पुरजोर प्रयास-हेतु उत्साह से भरपूर किया जा सकेगा। किन्तु इसके विपरीत हम अपने विद्यालयों में बिलकुल उल्टी शिक्षा दे रहे हैं। हमारे इतिहास के सबसे गौरवशाली काल को 'अन्धकार युग' कहा जाता है। दासता के कालखण्डों को महिमान्वित किया जाता है, हमारे स्वतंत्रता सेनानियों के प्रेरक योगदान को नहीं। हमारे इतिहास का अधिकांश 'मुगल काल' और 'ब्रिटिश काल' है। यदि हमारे बच्चों को यही शिक्षा दी जाती है कि भूतकाल में हमारा कुछ महान

नहीं था, हम सदैव पराजित राष्ट्र रहे हैं, केवल मुगलों व अंग्रेजों के आगमन के बाद हमारे राष्ट्र का विकास हुआ है अर्थात् हमारा अतीत किसी गर्व के योग्य नहीं है तथा हमारे पूर्वज किसी प्रतिस्पर्धा के योग्य नहीं थे तो क्या हम उनसे किसी सार्थक वस्तु की अपेक्षा कर सकते हैं?

''हाँ, यदि आप हिन्दुओं के अतीतकालीन उपलब्धियों का, आक्रान्ताओं के विरुद्ध संघर्ष में उनके आत्म-बलिदानी उत्साह और वीरता का उल्लेख ओजस्वी रूप में करेंगे - फिर आक्रान्ता ग्रीक, मुस्लिम अथवा अंग्रेज कोई भी हो तो आप तुरन्त 'साम्प्रदायिक' घोषित कर दिए जाएंगे। यही है असली अड़चन और समस्या का मूल मर्म।'' श्री छागला एक क्षण शान्त रहे फिर उन्होंने स्वीकार किया कि ''हाँ, ऐसा ही है।'

आधार को न भूलें

एक बार मैं नासिक के किसी विद्यालय में गया। वहाँ गलियारे की दीवार पर सैकड़ों चित्र लगे थे, परन्तु वे सभी यूरोप व अन्य देशों को चित्रण करने वाले थे। हमारे इतिहास या महाकाव्यों से सम्बन्धित एक भी चित्र नहीं था। मैंने प्रधानाध्यापक से पूछा ''ये चित्र हमारी युवापीढ़ी में उचित भावना का संचार कैसे करेंगे? इनमें हल्दीघाटी व पानीपत इत्यादि के युद्ध-चित्र क्यों नहीं हैं?'' उसने उत्तर दिया - ''हमारा दृष्टिकोण अपने देश की सीमाओं में ही बँधा तथा संकीर्ण नहीं होना चाहिए।'' अन्तर्राष्ट्रीय और इसी प्रकार के अन्य नारे हमारे नवयुवकों के मानस पर सत्यानाशी प्रभाव डालेंगे।

राष्ट्रवाद के ठोस व सुदृढ़ आधार के बिना, मानवता एवं अन्तर्राष्ट्रीयवाद की बातें करना हमें किसी कर्म का नहीं रखेंगी। जहाँ तक हमारे राष्ट्रीय दर्शन व धरोहर का प्रश्न है, उसने सदैव अपनी परिधि में सारी मनुष्य जाति के सर्वोच्च कल्याण को अंगीकार किया है। इस प्रकार हमारे राष्ट्रवाद का उज्जवल रूप ही हमारे बच्चों को मानव कल्याण के उच्चतम मूल्यों से विमुख नहीं करेगा, प्रत्युत् इन मानव-मूल्यों को सुदृढ़ ही करेगा।

वर्तमान शिक्षा केवल सूचनात्मक है

हमारी वर्तमान शिक्षा केवल वृत्तामक (इन्फॉरमेटिव) है, संस्कारात्मक (फॉरमेटिव) नहीं। उसका जोर इसी पर है कि देश का युवक किसी प्रकार डिग्री प्राप्त कर ले। हमारे युवकों का व्यक्तित्व उभर आए - इस ओर उसका ध्यान नहीं है। आज जीवनस्तर सुधारने की बातें कही जाती हैं। उनका सम्बन्ध केवल जड़ वस्तुओं से है। आवश्यकताओं को बढ़ाना, माँगों को पूर्ण करना, निम्नस्तरीय दुष्ट वासनाओं की पूर्ति करते हुए मनुष्यान्तर्गत पशु को पुष्ट करना - यही उस जीवनस्तर सुधार का

अर्थ है। मनुष्य का मानसिक, बौद्धिक एवम् आध्यात्मिक विकास करने से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सब बातों का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि आज मनुष्य भले-बुरे तरीकों से पैसा जुटाने में लगा हुआ है। धन-प्राप्ति और उपभोग, यही मानो जीवन का लक्ष्य बन गया है। 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' संज्ञा का अर्थ नाचना, गाना और मनुष्य की निम्न भावनाओं को उत्तेजित करना ही माना जाता है। 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' का वास्तविक महत्त्व तो मनुष्य में बौद्धिक, भावनात्मक जगत् के उच्च गुणों को, जीवन-मूल्यों को अनुप्राणित करने तथा भावनाओं व प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करने में है। ये सब बातें आज पूर्णतः दुर्लक्षित हैं। वे या तो अनावश्यक मानी जाती है या अनुचित।

मनुष्य निर्माण

इस विषय का अधिक विस्तार न करते हुए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आज की शिक्षा-प्रणाली में आमूलाग्र परिवर्तन आवश्यक है। प्रत्येक विद्यार्थी को धर्म के आधारभूत तत्त्व अवश्यमेव पढ़ाए जाने चाहिए। जिन्होंने उन उच्च तत्त्वों को अपने आचरण में उतारा है और दिग्दर्शित किया है, ऐसे अपने महान पूर्वजों के जीवन-चरित्र उन्हें पढ़ाए जाने चाहिए। उन्हें अपना विशुद्ध एवं सत्य इतिहास पढ़ाना चाहिये तथा अपनी राष्ट्रीय विरासत के भव्यतम पहलुओं को उनके सम्मुख रखना चाहिए। प्राथमिक यौगिक क्रियाओं के द्वारा उन्हें मनःसंयम का शास्त्र अवश्य सिखाना चाहिये। शिक्षा का शेष भाग परिस्थिति, दैनिक जीवन के तथ्य, व्यक्तिमात्र की अभिरुचि आदि बातों पर निर्भर रहना चाहिए। वह जीवन की सब परीक्षाएँ उत्तीर्ण हो सके और सब संकटों से जूझ सके - ऐसा पाथेय बिल्कुल प्रारम्भ से ही हमें उसके लिये जुटाना चाहिए। किसी भी विषय के सम्बन्ध में क्यों न हो, कर्तव्यभावना पर जोर रहना चाहिए। उत्कृष्ट कर्तव्यदक्षता सर्वोपरि महत्त्व की बात है। परन्तु, हो सकता है कि आजकल के स्वार्थपोषक वातावरण में वह अव्यवहार्य दिखाई दे।

ध्येयोन्मुख शिक्षा-प्रणाली

उसके लिये एक ही उपाय है। विद्यार्थियों की ग्रहणशील आयु में, उनके मन पर सतत् संस्कारों से यह सत्य अंकित कर देना चाहिए कि कर्तव्य सर्वोपरि है और सब अधिकार - चाहे व्यक्ति के हों चाहे समूह के - कर्तव्यसापेक्ष हैं और कर्तव्यकी तुलना में गौण हैं। विद्यार्थियों में समुचित कर्तव्य-भावना जागृत करने के लिये हमारी शिक्षा-प्रणाली ध्येयोन्मुखी होनी चाहिए। 'ध्येय' शब्द को लेकर मार्ग-भिन्नता अपनाई जा सकती है तथा उसके परस्पर विरोधी अर्थ भी लगाए जा सकते हैं। फिर भी, कुछ व्यापक मूलभूत तत्त्वों के सम्बन्ध में सबका एकमत होगा, ऐसी मुझे आशा है। मनुष्य प्राणी अन्तिम परम सत्य के पथ का एक पथिक है। उस सत्य को निःस्वार्थ व भक्तिपूर्ण सेवा से प्राप्त किया जा सकता है। मानवता की सेवा से ही हम सत्य

की सेवा कर सकते हैं। मानवता की सेवा का प्रारम्भ अपने समाज की सेवा से होना चाहिये। समान पूर्वज, विरासत, परम्परा व राष्ट्रीय अस्मिता से किसी भी समाज में एकरूपता निर्माण होती है। हम सबका जिसने सांगोपन किया है और जिसकी भक्ति के साधारण गुण ने हमें एक राष्ट्रपुरुष के अंगभूत रूप मे ंसुबद्ध किया है, अपनी इस पवित्र मातृ-भूमि के विषय में हमारी मूलभूत कल्पनाएँ हैं। यह हमारी आधारभूत दृष्टि है। यदि हम इस एक ध्येय के प्रति तीव्र त्याग-भावना का दृढ़ आधार निर्माण करते हैं, तो सम्पूर्ण समाज की आकाँक्षा, भावना और बुद्धि में सामंजस्य प्रस्थापित होगा। जब इस सामूहिक इच्छा-आकांक्षा के साथ सामुदायिक और नियन्त्रित शारीरिक बल का संयोग होगा, तो वही बात निर्माण होगी जिसे लोग 'अनुशासन' कहते हैं। सैनिक शिक्षा के द्वारा केवल शारीरिक स्तर पर कृति-सामंजस्य उत्पन्न हो सकता है - इस दृष्टि से जब तक उसकी ओर देखा जाता है, तब तक वह ठीक है और शिक्षा के लिये इस सीमा तक वह पूरक भी सिद्ध होती है। संस्कारक्षम शालेय जीवन से महाविद्यालय की शिक्षा पाने तक विद्यार्थियों को यथाक्रम उच्च सैनिक शिक्षा दी जानी चाहिए। चाहे यह शिक्षा सशस्त्र सैनिकों के स्तर जैसी ऊंची न हो परन्तु केवल सैनिक शिक्षा के भरोसे अनुशासन का वास्तविक भाव नहीं भरा जा सकता। वह तो सार्वजनिक महान ध्येय के प्रति भक्ति से निर्मित इच्छानुशासन अंकित करने के लिये किये गए विशेष प्रयत्नों से ही भरा जा सकता है।

योग्य वातावरण

शैक्षणिक संस्थाओं को तथा वसतिगृहों (छात्रावासों) को दी गई सब सुविधाएँ इसी एक लक्ष्य हेतु कार्यान्वित होनी चाहिए। आज इन सुविधाओं का उपयोग केवल मनोरंजन तथा आमोद-प्रमोद के लिए किया जा रहा है। विद्यार्थी-जीवन में इनका भी एक स्थान अवश्य है, परन्तु पूरे वातावरण में ज्ञान-लालसा का संचार होना चाहिये। ज्ञान के क्षेत्र में कुछ न कुछ विशेष मुझे करना है, देना है, ऐसी तीव्र इच्छा विद्यार्थियों के मन में सदैव रहनी चाहिये। अपनी ध्येय-सेवा में मुझे सुनिश्चित स्थान प्राप्त करना है, ऐसी आकाँक्षा सबके मन में होनी चाहिये। इसके लिये व्याख्यान, परिसंवाद, वादिविवाद, खेल-व्यायाम, चित्रादि कलाप्रदर्शन, वन-विहार, पर्यटन, जीवनोपयोगी परिश्रम, प्रत्यक्ष जीवन के विविध व्यवसायों के लिये उपयोगी शारीरिक परिश्रम, दीन-दुखियों की सेवा की गतिविधियाँ निर्धारित पाठ्यक्रम के अतिरिक्त प्रारंभ की जा सकती है।

मार्गदर्शक शिक्षक

इसके लिये शिक्षकों को तथा वसतिगृह प्रमुखों (हॉस्टल वार्डेन्स) को सतत् मार्गदर्शन करना होगा। अतः शिक्षकों में भी विशेष पात्रता की आवश्यकता रहेगी। सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि पढ़ाने के विषयों का उन्हें उत्तम ज्ञान रहना चाहिये।

फिर उनका चरित्र निष्कलंक चाहिये। विद्यार्थियों के साथ प्रेमपूर्ण तथा आत्मीयता का व्यवहार करने का उनका सहज स्वभाव होना चाहिये। यदि शिक्षकों के मन पर पैसा कमाने का भूत सवार हो गया है, अपने परिवार के सदस्यों को दो जून रोटी मिलती रहे इसके लिये यदि उन्हें इधर-उधर को पूरक-उद्योग करने पड़ते हैं, उस ढंग से यदि वे अपनी दृश्यमान सामाजिक प्रतिष्ठा किसी न किसी प्रकार सम्भालते हैं, उन्हें यदि बहुत सारा काम दे दिया गया है और विद्यार्थियों की बहुत बड़ी संख्या यदि उन्हें सम्भालनी पड़ती है, तब उन शिक्षकों का सुयोग्य स्तर रहने की अपेक्षा करना व्यर्थ है। हमें शिक्षकों की आर्थिक स्थिति सुधारनी चाहिये तथा उनकी कक्षा के विद्यार्थियों की संख्या भी सीमित करनी चाहिये।

हमारा यह अनुभव है कि एक व्यक्ति सोलह से लेकर चौबीस पाल्यों (वार्डो) की देखभाल सहज रूप में और उत्कृष्ट रीति से कर सकता है। वांछित फल प्राप्त करने के लिये हमें प्रमाण प्रस्थापित करना होगा। वसतिगृह प्रमुखों (हॉस्टल वार्डेन्स) के लिये भी यही बात सत्य है।

माता-पिता का कर्त्तव्य

यांत्रिक उद्योगों के विकास के साथ-साथ आज के जन-जीवन में आर्थिक बोझ और खींचतानी बढ़ गई है, जिसका परिणाम यह हुआ हे कि हमारी प्राचीन 'गृह' संस्था उध्वस्त हो गई है। अपने पाल्यों की ओर ध्यान देने के लिये माता-पिताओं को तथा पालकों को बहुत कम समय मिलता है। उनसे अधिक अपेक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु यदि वे अपने धर्म का पालन करते हैं और स्वयं को सद्‌गुणों से युक्त बनाते हैं, यदि वे सद्‌गुणों से परिपूर्ण धार्मिक जीवन का अवलम्बन करते हैं, यदि वे अपने परम्परा से प्राप्त कुलधर्म-कुलाचारों को यथोचित प्रकार से करते हैं, सम्पूर्ण नहीं तो कम से कम उनको अत्यावश्यक कार्यों में सहभागी होने के लिये आह्वान करते हैं तथा उन सब बातों का अभास कराते हैं तो युवकों में सद्‌वर्तन एवं अनुशासन संचारित करने के लिये इसका प्रर्याप्त प्रभाव पड़ सकता है। अड़ोसी-पड़ोसी अथवा आसपास के अन्य व्यक्ति भी यदि अपने व्यक्तिगत व्यवहार का स्तर अच्छा रखते हैं, तो वे भी इस दिशा में सहायक हो सकते हैं।

बच्चों का सीखना अनुकरण से होता है। शिक्षक, वसतिगृह प्रमुख, माता-पिता, पड़ोसी - इन सबके जीवन का बच्चों के संस्कारक्षम मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतः इन लोगों को यह बात समझनी चाहिये और तदनुसार अपने जीवन को ढालना चाहिये।

विद्यार्थी संगठन राजनीतिक दलों से मुक्त हों

देश के सर्वमान्य वायुण्डल का भी हमें इस सन्दर्भ में विचार करना होगा। आज का वातावरण जीवन के आर्थिक एवं राजनैतिक पहलुओं को अत्यधिक महत्त्व देनें

से कलुषित हो गया है। इन क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों को, समाज के नेता और आदर्श के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। क्वचित् कुछ अपवादों को यदि हम छोड़ दें, तो इन लोगों का चरित्र और व्यवहार बड़ा अनुकरणीय रहता है, ऐसा कहना कठिन होगा। आए दिन इन लोगों द्वारा लोगों को उकसाना-भड़काना चलता रहता है। आन्दोलन चलते रहते हैं। जनता की भावनाएँ, जो बहुदा दुर्भावनाएँ ही रहती हैं, उत्तेजित की जाती हैं। फिर, जो नेता आदर्श के रूप में सामने आते हैं, उनकी नैतिक क्षमता कोई खास प्रशंसनीय नहीं रहा करती। आन्दोलनों में भावनाओं को भी उभारा जाता है। युवकों का मन कोमल तथा भावना-प्रधान रहता है। साथ-साथ उनमें बहुत अधिक उत्साह रहता है। ऐसी परिस्थिति में वे इन आन्दोलनों से निर्लिप्त रहेंगे और उन पर उनका कोई प्रभाव नही नहीं पड़ेगा - ऐसी अपेक्षा करना अस्वाभाविक होगा।

आन्दोलन के पुरस्कर्ताओं की तो यही इच्छा रहती है कि आन्दोलनों में भाग लेने वालों की संख्या बढ़े और आन्दोलन जोर पकड़े। फिर इस चंचलमना तरुण-शक्ति को अपने काम में लाने का मोह उन्हें होता ही है। हम यह देखेंगे कि अधिकांश विद्यार्थी-संगठन किसी न किसी राजनीति पक्ष के या तो आश्रित हैं, या उनके मार्गदर्शन में चलते हैं, क्योंकि इन संगठनों के द्वारा राजनैतिक आन्दोलनकर्ताओं की मुट्ठी में सदा के लिये एक आज्ञाकारी शक्ति बनी रहती है। यह वस्तुस्थिति अवश्यमेव बदलनी चाहिये। उच्च कक्षाओं में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी राजनीति और राजनैतिक पक्षों का निष्पक्ष भाव से और शास्त्रीय दृष्टि से भले ही अभ्यास करें, परन्तु उन्हें चाहिये कि विद्यार्थी-संगठन के कार्य में किसी राजनैतिक पक्ष को या नेता को वे हस्तक्षेप न करने दें।

संकलन : लज्जाराम तोमर

(श्रीमद्‌भागवद्‌गीता वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, कुरुक्षेत्र के भवन शिलान्यास समारोह पर दिये गये उद्‌बोधन का एकांश)

राजनीतिक व्यवस्था : श्री गुरुजी के विचार

- डॉ. गौरीनाथ रस्तोगी

श्री गुरुजी ने हिन्दू आर्ष ग्रन्थों में उल्लिखत उस स्वर्णिम काल की सामाजिक स्थिति और समाज व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए यह भी कहा था कि उस समय का सम्पूर्ण समाज श्रेष्ठतम चारित्रिक गुणों से युक्त था और प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना अभ्युदय और निःश्रेयस अथवा लौकिक एवं आत्मिक-आध्यात्मिक प्रगति करने का समान सुअवसर प्राप्त था। फलतः सम्पूर्ण समाज को स्वस्थ एवं सुव्यवस्थित रखकर संगठित समाज-जीवन का संचालन करने में किसी तरह की कोई कठिनाई होने की आशंका नहीं हो सकती थी क्योंकि समाज के सभी घटक या सदस्य आपस में स्वार्थरहित और स्नेहपूर्ण आत्मीय संबंधों से युक्त थे और धर्म उनके सम्पूर्ण जीवन का नियमन या नियंत्रण करता था।

हिन्दू जीवन वाङ्मय में वर्णित इस धर्म-आधारित श्रेष्ठतम स्थिति का उल्लेख करते हुए ही हमारे तत्त्वज्ञानी मंत्रदृष्टा ऋषि-महर्षियों ने किसी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था अथवा राज्य की आवश्यकता अथवा अपरिहार्यता नहीं अनुभव की थी। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा थाः

न राज्यं न च राजासीत्
न दण्डो न च दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा
रक्षन्ति स्म परस्परम्।।

राज्य-सत्ता की प्रकृति

श्री गुरुजी के अनुसार, हिन्दू जीवन-दर्शन अथवा हिन्दू-वाङ्मय में वर्णित समाज-जीवन की इस आदर्श स्थिति के बावजूद जब तक वह अवस्था स्थायी व्यावहारिक रूप ग्रहण नहीं करती तब तक समाज की धारणा करने अथवा स्वस्थ सामाजिक जीवन के संचालन के लिए राज्य अथवा राज्य-सत्ता की आवश्यकता भारत के मनीषियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार की है। किन्तु राज्य-सत्ता की इस अपरिहार्यता या अनिवार्यता को स्वीकार करने के बाद भी इस देश के मनीषियों ने स्पष्ट रूप से यह भी घोषणा की थी कि अनियन्त्रित राज्य-सत्ता समाज का कल्याण करने अथवा उसे सुख पहुँचाने के स्थान पर उसे दुःख देकर दासता की दुःस्थित उत्पन्न कर देगी। इसका कारण बताते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि राज्य-सत्ता पर बैठे हुए व्यक्ति या व्यक्ति समूह में अपनी सत्ता के लिये भविष्य में कभी भी और किसी समय भी संकट बन जाने वाले विरोधियों का दमन कर अत्याचार करने की सहज प्रवृत्ति होती है। फलस्वरूप राज्य-सत्ता द्वारा सम्पूर्ण समाज का सभी

प्रकार का लोक-कल्याण हो पाना कभी भी संभव नहीं है। 'स्वतंत्रता, समानता और बन्धुता, के श्रेष्ठ आदर्शों की उद्घोषणा के साथ ईस्वी सन् १७८९ में फ्रांस के अन्दर निरंकुश और घोर अत्याचारी राजतन्त्र की समाप्ति के विरुद्ध हुई सफल क्रान्ति का अन्ततः क्या परिणाम हुआ? क्रान्ति के सफल संचालन में एक-दूसरे के साथ कन्धे से कंधा मिलाकर एकजुट संगठित शक्ति के पुंज बने यही पारस्परिक सहयोगी ही एक-दूसरे के कट्टर अथवा घोर शत्रु बन बैठे तथा उन्होंने सत्ता हथियाने के बाद अपने ही सहयोगियों का न केवल घोर दमन किया, पाशविक यातनायें दी अपितु उन्हें मौत के घाट तक उतार दिया। फलतः जिस क्रान्ति को सफल बनाने के लिए क्रान्ति के उपासकों, अनुयाइयों और नेताओं ने अपना सर्वस्व दाँव पर लगाकर अपने मानवीय प्रयासों की पराकाष्ठा कर दी थी, उन्होंने अल्प समय में ही उस क्रान्ति का इतना वीभत्स रूप फ्रांसीसी समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया कि वहाँ का सामान्य जन यह कहने को विवश हो गया है कि 'क्रूरता तेरा ही नाम क्रांति है। (Cruelty thy name is revolution)

अत्याचार का सिलसिला

फ्रांसीसी राज्य क्रांति की यह घटना एकाकी नहीं है। ईस्वी सन् १९८७ में रूस में लेनिन और ट्राट्स्की के नेतृत्व में हुई कथित सोवियत क्रांति का इतिहास तो उससे भी अधिक वीभत्स है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि इस रूसी क्रांति के निर्विवाद नेता लेनिन को उसके ही एक अनुयायी स्टालिन ने राज्य सत्ता पर अपना एकाधिकार प्रस्थापित करने के लिए उसकी बीमारी की अवस्था में उसे विष देकर उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। क्रांति के अन्य अपने से वरिष्ठ सहयोगियों को चुन-चुन कर मौत के घाट उतार दिया। लेनिन के अप्रतिम सहयोगी तथा लेनिन द्वारा क्रांति को संभव बनाने का जिसने अथक परिश्रम कर अत्यन्त प्रभावशाली तन्त्र खड़ाकर उसका नेतृत्व लेनिन को सौंपकर जो उस रूसी क्रांति की अग्रतम पंक्ति में रहा वह ट्राट्स्की लेनिन की मृत्यु के बाद अपने जीवन की रक्षा हेतु सुदूर मेक्सिको भाग जाने पर भी अपना जीवन सुरक्षित न कर पाया और स्टालिन ने अपने विश्वस्त हस्तकों द्वारा उसे भी मरवा दिया। लाखों लोगों को साइबेरिया के श्रमिक बन्दीगृहों में अमानवीय एवं पाशविक बर्बरता के साथ मौत के घाट उतार देने की घटना सर्वविदित है। सत्ता की इस अनियन्त्रित भूख से ही २५ जून, १९७५ को अपने देश की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने आपातकाल लागू कर अपने से मतभेद रखने वाले राजनेताओं सहित लाखों लोगों को न केवल सीखचों के पीछें ठूँस दिया था अपितु ऐसे बर्बर अत्याचार किए जिससे साम्राज्यवादी ब्रिटिश सत्ता का दमन-चक्र भी फीका पड़ गया और जयप्रकाश नारायण सरीखे सर्वत्यागी, निःस्वार्थ नेता को भी अधमरा कर डाला।

पश्चिम की केन्द्रीकृत व्यवस्था

आधुनिक समय में पश्चिमी जगत् सहित संसार के समस्त देशों में क्रियाशील राज्य-व्यवस्था के घातक स्वरूप को श्री गुरुजी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में रेखांकित किया था। उनका सुनिश्चित मत था कि इन सभी राज्य-सत्ताओं की मूल प्रकृति केन्द्रीकरण की व्यवस्था से संबद्ध है। उनके पूँजीवादी, मार्क्सवादी अथवा लोककल्याणकारी राज्य की संकल्पना से उनमें किसी तरह का सारभूत अन्तर नहीं उत्पन्न होता क्योंकि उनकी मूल प्रवृति केन्द्रीकरण पर ही अवलम्बित है। फलतः इन सभी राज्य-व्यवस्थाओं में शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक जीवन, आर्थिक संरचना, व्यापारिक एवं वाणिज्यिक कार्यप्रणाली आदि सभी पर राज्य का अनियंत्रित एकाधिकार बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार के सम्पूर्ण मानवीय जीवन को व्याप्त करने वाली राज्य-सत्ता अथवा राज्य-व्यवस्था में व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूरी तरह उपेक्षा, अवहेलना और अवमानना करके उसे केवल राज्य के क्रीतदास के रूप में जीवन-यापन करने की आजादी या अधिकार मात्र रह जाता है और वह राज्य-रूपी, मशीन या यंत्र का एक पुर्जा बन जाता है। उसके अपने गुणों, इच्छाओं, आकाँक्षाओं, अभिलाषाओं आदि के आधार पर अपना विकास करने की कोई संभावना नहीं रहती। अतः ऐसी राज्य-व्यवस्था व्यक्ति, समाज और मानव जाति के लिए अत्यन्त हानि पहुंचाने वाली है।

दुष्परिणाम

श्री गुरुजी ने यह भी स्पष्ट किया था कि राज्य-सत्ता कभी भी स्थायी नहीं रहती। उसमें आन्तरिक एवं वाह्य कारणों से परिवर्तन का एक सतत् क्रम चलता रहता है। सामान्यतया यह समझा जाता है कि आन्तरिक कारणों से राज्य-सत्ता अथवा उसके स्वरूप में आने वाले परिवर्तन से समाज और राष्ट्रजीवन की कोई हानि नहीं होती। किन्तु श्री गुरुजी का सुनिश्चित मत था कि आन्तरिक कारणों से राज्य-सत्ता और उसके स्वरूप में होने वाला परिवर्तन भी समाज और राष्ट्र जीवन को अत्यधिक प्रभावित करता है और उसके परिणाम अत्यन्त दूरगामी होते हैं। इसका कारण स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने बताया था कि विभिन्न राजनीतिक दलों की नीतियों में प्रायः बहुत अधिक अन्तर होता है। अतः राज्य-व्यवस्था में आया हुआ परिवर्तन उसके स्वरूप को अत्यधिक प्रभावित करता है।

उनके इस कथन की पुष्टि के लिए आधुनिक भारत की राजनीतिक व्यवस्था में आये एक-दो परिवर्तनों के घटनाक्रम से इसे भली-भाँति समझा जा सकता है। मई १९९८ में भारत की तत्कालीन केन्द्र सरकार ने पोखरण में सफल आणविक परीक्षण करके अपने राष्ट्र को एक परमाणु-शक्ति सम्पन्न देश बनाकर उसकी सामरिक क्षमता, राष्ट्रीय सीमाओं की पुख्ता सुरक्षा व्यवस्था, विश्व के राष्ट्रसमुदाय में भारत के राष्ट्रीय सम्मान एवं आत्मगौरव आदि में अद्वितीय और आशातीत

अभिवृद्धि कर दी। इससे चिढ़कर अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, जापान, आस्ट्रेलिया आदि संसार के अनेक देशों ने भारत पर नाना प्रकार के आर्थिक-वित्तीय और सामरिक प्रतिबन्ध लगा दिए। स्वयं अपने देश में संसद के अन्दर मान्यताप्राप्त प्रमुख विपक्षी दल ने इस पोखरण-परीक्षण के आधार पर भारत को परमाणु शक्ति - सम्पन्न देश बनाने का खुला विरोध किया। वामपंथी मार्क्सवादी कम्युनिस्टों द्वारा इस विरोध का स्वर अत्यन्त तीखा था। फिर भी तत्कालीन केन्द्र सरकरा ने आन्तरिक और जागतिक दबाव के सम्मुख झुकने से इंकार करके न केवल भारत के राष्ट्रीय आत्मगौरव में आशातीत वृद्धि की अपितु देशवासियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करते हुए अत्यन्त कुशल प्रशासनिक क्षमता एवं नीति-चातुर्य के द्वारा उस विरोध को पूरी तरह विफल भी कर दिया।

तत्पश्चात् मई, २००४ में आन्तरिक आधार पर भारत की नवीन सरकार का गठन करने के उद्देश्य से हुए लोकतांत्रिक चुनाव से राज्य सत्ता में परिवर्तन हो गया। अब वे राजनीतिक दल और राजनेता सत्तासीन हो गए जिन्होंने सन् १९९८ में पोखरण आणविक परीक्षण का खुला विरोध किया था। फलतः भारत का आणविक अनुसन्धान कार्यक्रम शिथिल पड़ गया और उसके साथ ही भारत की परमाणुविक शक्ति और क्षमता को सीमित कर देने संबंधी अमेरिका के प्रस्ताव पर भारत के प्रधानमंत्री ने स्वीकृति की मुहर लगा दी और भारत के गैर सैनिक आणविक कार्यक्रम को अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण के लिए खोलकर राष्ट्र की संप्रभुता तक पर गहरा आघात कर दिया।

संचालन भिन्नता के परिणाम

श्री गुरुजी राजनीतिक व्यवस्था में आन्तरिक कारणों से आने वाले बदलाव के साथ ही नीतियों के संचालन और क्रियान्वयन से उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों की गंभीरता को भी बड़ी सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि से समझते थे। उनका स्पष्ट रूप से यह कहना था कि इस आधार पर भी राष्ट्र के सम्मान, आत्मगौरव, सुरक्षा आदि में अत्यन्त गंभीर परिवर्तन उपस्थित हो सकता है। उदाहरणार्थ १५ अगस्त, १९४७ को भारत के राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होने के बाद उसके सम्मुख जम्मू-कश्मीर और निजाम-हैदराबाद की रियासतों से संबंधित दो अत्यन्त गंभीर तथा महत्त्वपूर्ण समस्यायें उपस्थित हुईं। इतिहास साक्षी है कि निजाम-हैदराबाद से संबंधित समस्या का प्रभावपूर्ण तरीके से हल निकालने में अधिक समय नहीं लगा किन्तु जम्मू-कश्मीर का मसला आज ५८ वर्ष व्यतीत होने के बाद भी एक नासूर बना हुआ है। यह दोनों ज्वलंत घटनायें एक ही शासन के अन्तर्गत नीतियों के संचालन और क्रियान्वयन की भिन्नता से उत्पन्न होने वाले अन्तरों को भली-भांति स्पष्ट कर देती हैं।

बाह्य परिवर्तन घातक

श्री गुरुजी ने बाह्य कारणों अथवा बाहरी आक्रमणों से राज्य-सत्ता के बदलने के भीषण परिणामों से भी राष्ट्र और मानवता को पूरी तरह सचेष्ट किया था। उनका कहना था कि मानव इतिहास ऐसी अनेक घटनाओं से भरा पड़ा है जिनमें बाहरी आक्रमण के फलस्वरूप राज्य-सत्ता के स्वरूप में आने वाले परिवर्तनों ने आक्रान्त राष्ट्र की संस्कृति और अस्मिता ही समाप्त करके उन्हें इतिहास के पन्नों तक में ही सीमित करने का बाध्य कर दिया। ईरान, मिस्र, बेबीलोनिया, यूनान, मेक्सिको, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया सहित अफ्रीकी महाद्वीप के अनेक देशों की रामकहानी इसी प्रकार की है। इसी तथ्य और विश्लेषण की पुष्टि करते हुए एक सुप्रसिद्ध अफ्रीकी राष्ट्र-नेता जोमो केन्याता ने यूरोपीय जातियों के आक्रमण के फलस्वरूप लम्बे समय तक गुलाम बने रहने पर बड़ी ही सटीक टिप्पणी करते हुए कहा था कि 'जब आप लोग हमारे देश में आए तब अपने राष्ट्र की भूमि पर हमारा अपना स्वामित्व था और आपके हाथ में बाइबिल थी। किन्तु फिर आपने ऐसा सम्मोहक-जाल फैलाया कि उससे लम्बे समय तक भ्रमित होकर हम अर्द्ध-निद्रा में पड़े रहे और जब हमारी आँखे खुली तो हमने देखा कि अब हमारी भूमि के स्वामी तो आप बन गए हैं और बाइबिल आपने हमारे हाथों में थमा दी है।''

संस्कृति की जीवन शक्ति

कहने का तात्पर्य यह है कि परकीय या विदेशी आक्रमण के फलस्वरूप राज्य-सत्ता और उसके स्वरूप में आने वाला परिवर्तन संबंधित आक्रान्त राष्ट्र के अस्तित्त्व, धर्म, संस्कृति, साहित्य, कला, श्रेष्ठ सामाजिक जीवन और राष्ट्र के मान बिन्दुओं तक को समाप्त कर देता है। इतिहास साक्षी है कि इस्लाम और ईसाइयत ने आक्रमणकारी के रूप में संसार के प्रायः समस्त देशों में यही किया है। भारत में अपने दुष्चक्र में वह इसलिए सफल नहीं हो सके क्योंकि भारत के मंत्रदृष्टा ऋषि-महर्षि मनीषियों ने अपनी पवित्र मातृभूमि की शक्ति का केन्द्र राज्य, राजा का सिंहासन और राज्याधिकारी को नहीं बनाया था। उसकी संजीवनी शक्ति उन्होंने उसकी कालजयी संस्कृति में निहित की थी जोकि धर्म पर आधारित थी और आज भी है।

हथेली पर सरसों उगाना

राज्य-सत्ता के नित्य नूतन परिवर्तित स्वरूप अथवा उसकी प्रकृति का अत्यन्त सटीक विश्लेषण श्री गुरुजी ने किया है। उनका सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित मत था कि राज्य-सत्ता और उस पर आधारित राजनीति निहित स्वार्थों से ऊपर नहीं उठ पाती और इसलिए उस क्षेत्र में सक्रिय व्यक्तियों अथवा राजनेताओं की कथनी और करनी में प्रायः कोई साम्य न होकर उसके मध्य बड़ा भारी अन्तर रहता है तथा अवसरानुकूलता या अवसरवादिता का परिचय देते हुए राजनीति एक वारांगना की

भाँति अपना स्वरूप परिवर्तित करती रहती है। अतः उससे सतत लोककल्याण अथवा लोकमंगल की आशा करना हथेली पर सरसों उगाने के समान है।

विकेन्द्रीकरण

श्री गुरुजी का सुनिश्चित मत था कि भारत के प्राचीन दूरदृष्टा मनीषियों ने राज्य-सत्ता की इस प्रकृति और उसके साथ-साथ समाज-जीवन में शान्ति-व्यवस्था प्रस्थापित करने की दृष्टि से उसकी अपरिहार्यता स्वीकार करते हुए भी उसे संसार के अन्यान्य देशों की भाँति समाज और राष्ट्र का नियन्ता बनाने की मूर्खता नहीं की। इसके विपरीत उसे धर्मदण्ड के अधीन करके जनता-जनार्दन की शक्ति को सर्वोपरि घोषित किया। अतः उनका स्पष्ट रूप से यह कहना था कि राज्य-सत्ता के हाथ में अमर्यादित शक्ति कभी भी नहीं होनी चाहिए और हमारे पूर्वजों ने इसलिए सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को राज्य-सत्ता पर आश्रित न बनाकर समाज-केन्द्रित बनाया था और उसी संजीवनी शक्ति के आधार पर सृष्टि के आदि काल से आज तक नानाविध झंझावातों से जूझते हुए, संघर्ष करते हुए, भी वह अजेय बनी हुई है। जबकि संसार की अन्य सभ्यतायें इतिहास के काल-गाल में समा गई है। फलस्वरूप राज्य-सत्ता को अपने देश, समाज और राष्ट्र की बाहरी आक्रणमों से रक्षा, समाज के विभिन्न घटकों या सदस्यों और समुदाय के मध्य ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, मत्सर आदि से उत्पन्न होने वाले अन्तर्विरोधों या विवादों और संघर्षों का न्यायपूर्वक निष्पक्ष समाधान करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति, बुद्धि, प्रतिभा और प्रयासों की पराकाष्ठा कर देनी चाहिए। इससे अधिक अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार राज्य-सत्ता को कतई नहीं करना चाहिए क्योंकि वह राज्य-सत्ता के साथ-साथ उस समाज और राष्ट्र के लिए भी अत्यन्त घातक है जिसके सुव्यवस्थित और शान्तपूर्ण जीवन का संचालन करने तथा राष्ट्र की सीमाओं को अक्षुण्ण बनाने की जिम्मेदारी उसे सौंपी गई है। इसके अतिरिक्त राज्य-सत्ता के कार्य-क्षेत्र का अनावश्यक विस्तार समाज और उसके अंगभूत नागरिकों की प्रतिभा एवं प्रेरणा को कुण्ठित कर उन्हें विकसित नहीं होने देगा तथा वे राज्य-व्यवस्था पर पूरी तरह आश्रित हो जायेंगे। फलतः ''व्यक्ति के विकास के लिए यह स्थिति उपयुक्त नहीं। समाज के लिए भी यह हानिकारक है।''

बृहत् पारिवारिक भाव

श्री गुरुजी ने आधुनिक काल में पश्चिमी जगत् की वैज्ञानिक, तकनीकी और भौतिक प्रगति से चकाचौंध हो रहे अपनी भारत माता के सत्पुत्रों और उसका मार्गदर्शन करने को आतुर दिग्भ्रमित राजनेताओं तथा राजनीतिक दलों को सचेत करते हुए यह भी स्पष्ट किया कि अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही भारत की सनातन सामाजिक-व्यवस्था लोक-कल्याण के विरुद्ध नहीं है। किन्तु सच्चे और

वास्तविक लोक-कल्याण के लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी और पारिवारिक स्वार्थ से ऊपर उठाकर उसे सम्पूर्ण समाज के हित में कार्य करने के लिए संस्कारित और प्रेरित करना होगा। समाज के सभी सदस्यों में बृहत् परिवार के अभिन्न सदस्य होने का भाव उत्पन्न होकर जब उसमें पारस्परिक स्नेह और विश्वास का निर्माण होगा तब उनमें हिलायसदृश सुदृढ़ सामाजिक अनुशासन का स्वतः संचार हो जाएगा। राजनीति अथवा राज्य-व्यवस्था अपने समस्त नागरिकों में इन उदात्त गुणों की सृष्टि नहीं कर सकती। इसके विपरीत ध्येय की उदात्तता के अभाव में वह अपने अंगभूत निवासी नागरिकों में इन गुणों के होने पर उन्हें नष्ट करने का ही कार्य करती है क्योंकि उसकी कार्यप्रणाली व्यक्ति-व्यक्ति के निजी स्वार्थ को जगाकर उन्हें परस्पर प्रतिस्पर्द्धी बनाते हुए उनका शोषण करने की होती है।

महामंत्र

श्री गुरुजी की यह सुनिश्चित मान्यता थी कि साध्य की उपासना और उसकी प्राप्ति के लिये योग्य साधन की अनिवार्यता या अपरिहार्यता है क्योंकि ऐसा योग्य साधन ही उस वांछित साध्य को संभव बनाने में सक्षम और समर्थ होता है। अतः श्री गुरुजी ने अत्यन्त असंदिग्ध शब्दों में यह स्पष्ट किया कि संघ-निर्माता परमपूज्य डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने राष्ट्र में एकता का निर्माण करने के लिए प्रतिदिन एकत्र आने की कार्यपद्धति का सृजन किया और संस्कारों के माध्यम से अनुशासित जीवन व्यतीत करने का महामन्त्र राष्ट्र को देकर उसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया।

रा. स्व. संघ ने राज्य-सत्ता की सीमित कार्यक्षमता और सामाजिक व्यवस्था की श्रेष्ठता को हृदयंगम कर ऐसी कार्यपद्धति का विकास और अबलम्बन किया है जिसमें ऊपर उल्लिखित समस्त गुणों का विकास दैनन्दिन संस्कारों के आधार पर स्वतः हो जाता है। इसलिए श्री गुरुजी के शब्दों में हमारा संगठन केवल समाज के लिए है, अन्य किसी स्वार्थ के लिए नहीं। हम तो यह भी नहीं चाहते हैं कि ''हमारा नाम हो, संस्था का भी नाम नहीं चाहते और इसलिए संघ का इतना विकास करें कि वह समाज रूप हो जाए।''

श्री गुरुजी ने अपने कथन को सैद्धान्तिक विवेचना तक ही सीमित नहीं रखा अपितु स्वसंसेवकों का आह्वान करते हुए उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि ''संघ को समाजरूप बनाने के लिए परिश्रम करना होगा। लोग कम परिश्रम से, छोटे रास्ते से अपनी इच्छा पूर्ण करना चाहते हैं। अतः उनका यह भी सोचना स्वाभाविक है कि राज्यसत्ता का छोटा मार्ग (शार्टकट) क्यों न अपनाया जाए?''

एकमेव मार्ग

किन्तु जैसा राज्यसत्ता की वास्तविक प्रकृति और स्वरूप स्पष्ट करते हुए श्री

गुरुजी यह तथ्य असंदिग्ध शब्दों में प्रतिपादित कर चुके हैं कि राज्य-सत्ता व्यक्ति के अन्तर्निहित सद्गुणों को जाग्रत कर उनका विकास करने के स्थान पर उन में स्वार्थ-भावना भर कर समाज और राष्ट्र-जीवन में विघटनकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती है, ''अतः राज्यसत्ता के माध्यम से अपना श्रेष्ठतम लक्ष्य प्राप्त करने का वह सरल और छोटा मार्ग तो ध्येय की ओर ले ही नहीं जाता। फिर परिश्रम से डर कर, कर्ममय जीवन का त्याग कर अकर्मण्यता की उपासना करने पर हम सम्पूर्ण समाज में चैतन्य, निरन्तर उद्यमशीलता, अखण्ड कर्म-प्रवणता कैसे उत्पन्न कर सकेंगे? स्वयं आलसी बन कर दूसरे को परिश्रमी कैसे बना सकेंगे?''

''अतः एक ही मार्ग है और वह है संगठन का। स्वाभिमानी, स्नेहपूर्ण, गुणसम्पन्न, अनुशासित, नित्य उद्यमकारी, राष्ट्र को विश्व में ऊँचा उठाने वाला, सुसंगठित अतः समर्थ समाज ही हमारे सामने लक्ष्य हो सकता है और उसी की हमें उपासना करनी है।'' □

हम विचार करें

कार्य के विस्तार की धुन में कहीं हम अपने व्यक्तिगत जीवन के विकास के प्रति उदासीन न हो जायें। कार्य को प्रभावी बनाने एवं अपने प्रत्येक शब्द को परिवर्तन का संदेशवाहक बनाने की दृष्टि से आवश्यक है कि हम उसके पीछे कठोर साधना से उत्पन्न आदर्श हिन्दू का तेजस्वी व्यक्तित्व खड़ा करें। *हमारा प्रत्येक शब्द, प्रत्येक कृति, हमारी वेशभूषा, आहार-विहार एवं दिनचर्या, सभी कुछ हिन्दुत्व का परिचायक हो।* ''हम आत्मविश्लेषण करें और अपने छोटे से छोटे से व्यवहार के प्रति सतर्क रहें। हम विचार करें कि क्या ब्रह्म मुहूर्त में उठना, जो कि भारतीय जीवन-रचना का एक प्रमुख वैशिष्ट्य है, समस्त औपचारिक बन्धनों से परे हमारा स्वभाव बन गया है? क्या हम सांघिक शक्ति की उपासना के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत सामर्थ्य एवं स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए नित्य व्यायाम आदि करते हैं? क्या हम अपनी ज्ञानवृद्धि के लिए नियमपूर्वक कुछ पठन-पाठन करते हैं? एवं क्या हम एक आस्तिक हिन्दू के समान नित्य प्रति दो-चार मिनट के लिए ही क्यों न हो, आराध्य के प्रति अपनी श्रद्धा को केन्द्रित कर अपने मन को एकाग्र करने का प्रयास करते हैं?

- श्री गुरुजी

हिन्दू-मुस्लिम सामञ्जस्य की आधार भूमि

- डॉ. सैफुद्दीन जीलानी

(मूलतः ईरानी होते हुए भी डॉ. सैफुद्दीन जीलानी वर्षों पूर्व भारत में आकर बस गए थे। इस्लामी तत्त्वज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन करने के साथ ही तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय या हिन्दू तत्वज्ञान का गहन मनन भी उन्होंने किया था। व्यवसाय से पत्रकार होने के कारण सार्वजनिक मामलों में उनकी अत्यधिक रुचि थी। अतः श्री गुरुजी से प्रत्यक्ष भेंट करके उन्होंने ३० जनवरी, १९७२ को कलकत्ता में हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों पर अत्यन्त विस्तार से जो चर्चा की थी उसका विवरण निम्नलिखित है।)

श्री गुरुजी न केवल इस देश के सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं, अपितु वे देश के भाग्य विधाता हैं। वे कलकत्ता आए, तो मुझे उनसे मिलने का अवसर मिल गया। जातिवाद के दैत्य पर पूर्ण विजय मेरी आकांक्षा है। मुस्लिम बन्धुओं के विषय में सद्भावना रखने वाले हिन्दुओं की संख्या बहुत होने के कारण मुझे अपने प्रयत्नों में कुछ यश अवश्य प्राप्त हुआ। किन्तु वह संतोषकारक नहीं माना जा सकता। मेरे मतानुसार इस कार्य में, सिवाय श्री गुरुजी के अन्य कोई भी सहायक सिद्ध नहीं हो सकता।

श्री गुरुजी से भेंट, मेरे जीवन की अत्यन्त प्रेरक एवं अविस्मरणीय घटना सिद्ध हुई। हिटलर से लेकर नासिर तक विश्व की बड़ी-बड़ी हस्तियों से मैं मिल चुका हूँ। किन्तु श्री गुरुजी जैसा प्रसन्नचित, आत्मविश्वासी और प्रभावी व्यक्तित्व अब तक मेरे देखने में नहीं आया। ईमानदारी के साथ मुझे लगता है कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को सुलझाने के विषय में एकमात्र श्री गुरुजी ही हैं जो यथोचित मार्गदर्शन कर सकते हैं।

यह बात कहते समय मैंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को अपनी आंखों से ओझल नहीं किया है। अनेक वर्षों से संघ का कार्य मैं बहुत नजदीक से देखता आ रहा हूं। उसके आधार पर मैं असंदिग्ध रूप से कह सकता हूँ कि संघ इस देश के लिए बहुत बड़ा सहारा है। किन्तु अपने देश की दृष्टि से संघ-कार्य के महत्व का जिन्हें आकलन नहीं हुआ, ऐसे लोग अज्ञानवश अथवा जानबूझकर संघ विरोधी प्रचार किया करते हैं। सच्चाई तो यह है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ मुसलमानों का शत्रु नहीं, अपितु मित्र है। किन्तु यह बात मुसलमानों की समझ में नहीं आती। इसका कारण यह है कि वे स्वयं की बुद्धि से विचार नहीं करते। मानो विचार करने की जिम्मेदारी उन्होंने अपने अनभिज्ञ और षड्यंत्रकारी नेताओं को सौंप दी है।

उसी प्रकार मैं यह भी नहीं भूला हूं, कि रा. स्व. संघ में मुसलमानों का प्रवेश निषिद्ध है। हिन्दू-समाज में स्वाभिमान जागृत करने के लिए संघ का जन्म हुआ है। यह कार्य पूर्ण होते ही संघ के द्वार अहिन्दुओं के लिए तत्काल खुल जाएंगे। किसी भी इमारत का निर्माण-कार्य, उनकी नींव से हुआ करता है। भारत के भव्य प्रासाद की आधारशिला हिन्दू है। यह नींव मजबूत होते ही प्रासाद अभूतपूर्व वैभव से जगमगाने लगेगा।

मैंने श्री गुरुजी से पूछा "हाल ही के दिनों में किसी प्रमुख मुसलमान ने आपसे जातिवाद की समस्या पर चर्चा की है अथवा नहीं?" उन्होंने अनेक नाम बताए। परन्तु इस संदर्भ में मेरे दिमाग में जिन मुस्लिम नेताओं के नाम थे, उनमें से एक भी नाम उनमें नहीं था। इसलिए मेरे दिमाग में जो नाम थे उनका उल्लेख करते हुए मैंने उनसे सीधा प्रश्न पूछा, "क्या आप इनसे मिलना चाहेंगे?" उन्होंने तत्काल उत्तर दिया, "मैं उनसे जरूर मिलना चाहूंगा। इतना ही नहीं, उनसे मिलकर मुझे प्रसन्नता होगी।"

उनके उक्त शब्दों में सदिच्छा एवं प्रामाणिकता का स्पष्ट आवाहन था। परन्तु जैसा कि कुरान में कहा गया है, "विकृति से चेतनाशून्य हुए कानों" में क्या वह प्रविष्ट होगा?

मैं समग्र भारतीय जनता का एक नम्र सेवक हूं। परन्तु सच कहूं तो मेरे दिमाग में सबसे पहले अगर कोई बात आती है तो वह है भारत के मेरे मुस्लिम भाइयों के बारे में। हिन्दुओं के लिए नेतृत्व की कोई कमी नहीं है। किन्तु मुसलमानों की हालत उन भेड़ों जैसी है, जिनका कोई गड़रिया हीं नहीं है। इसलिए मैं मुसलमानों से यही कहना चाहता हूं कि वे अपनी आंखे और दिमाग खुले रखें। इसी बात को ध्यान में रखकर मैंने श्री गुरुजी जी से भेंटवार्ता का अवसर मांगा था, वह भेंटवार्ता इस प्रकार हैं :–

प्रश्न : देश के समक्ष आज जो संकट मुंह बाए खड़े हैं, उन्हें देखते हुए हिन्दू-मुस्लिम समस्या का कोई निश्चित हल ढूंढना, क्या आपको आवश्यक प्रतीत नहीं होता?

उत्तर : देश का विचार करते समय मैं हिन्दू और मुसलमान के संदर्भ में विचार नहीं करता। परन्तु इस प्रश्न की ओर लोग किस दृष्टि से देखते हैं? आजकल सभी लोग राजनीतिक दृष्टिकोण से ही विचार करते दिखाई देते हैं। हर कोई, राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर व्यक्तिगत अथवा जातिगत स्वार्थ सिद्ध करने में लिप्त है। इस परिस्थिति को मात करने का केवल एक ही उपाय है, वह है, राजनीति की ओर देशहित और केवल देशहित की ही दृष्टि से देखना। उस स्थिति में वर्तमान सभी समस्याएं देखते ही देखते हल हो जाएंगी।

हाल ही में मैं दिल्ली गया था। उस समय अनेक लोग मुझसे मिलने आए थे। उनमे भारतीय क्रांति दल, संगठन कांग्रेस आदि दलों के लोग भी थे। संघ को हमने प्रत्यक्ष राजनीति से अलग रखा है। परन्तु मेरे कुछ पुराने मित्र जनसंघ में होने के कारण कुछ मामलों में मै मध्यस्थता करूं इस हेतु से वे मुझसे मिलने आए थे। उनसे मैंने एक सामान्य सा प्रश्न पूछा, "आप लोग हमेशा अपने दल का और आपके दल के हाथ में सत्ता किस तरह आए इसी का विचार किया करते हैं। परन्तु क्या दलीय निष्ठा, दलीय हितों का विचार करते समय आप सम्पूर्ण देश के हितों का भी कभी

विचार करते हैं?" इस सामान्य से प्रश्न का "हां" में उत्तर देने के लिए कोई सामने नहीं आया। समग्र देश के हितों का विचार सचमुच उनके सामने होता, तो वे वैसा साफ-साफ कह सकते थे। किन्तु उन्होंने नहीं कहा इसका अर्थ स्पष्ट है कि कोई भी दल समग्र देश का विचार नहीं करता। मैं समग्र देश का विचार करता हूं। इसीलिए मैं हिन्दुओं के लिए कार्य करता हूं। परन्तु कल यदि हिन्दू भी देश के हितों के विरुद्ध जाने लगे, तो उनमें मेरी कौन सी रुचि रह जाएगी?

रही मुसलमानों की बात। मैं यह समझ सकता हूं कि अन्य लोगो की तरह उनकी भी न्यायोचित मांगें पूरी की जानी चाहिए। परन्तु जब चाहें तब विभिन्न सहूलियतों और विशेषाधिकारों कीं मांगें करते रहना कतई न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। मैंने सुना है कि प्रत्येक प्रदेश में एक छोटे पाकिस्तान की मांग उठाई गई है। जैसा कि प्रकाशित हुआ है कि एक मुस्लिम संगठन के अध्यक्ष ने तो लाल किले पर अपना झंडा फहराने की योजना की बात की है। उन महाशय ने इसका खण्डन भी नहीं किया है। ऐसी बातों से समग्र देश का विचार करने वालों का संतप्त होना स्वाभाविक है।

उर्दू के आग्रह का ही विचार करें। पचास वर्षों के पूर्व तक विभिन्न प्रांतों के मुसलमान अपने-अपने प्रांतों की भाषा बोला करते थे, उन्हीं भाषाओं में शिक्षा भी ग्रहण करते थे। उन्हें कभी ऐसा नहीं लगा कि उनके धर्म की कोई अलग भाषा है।

उर्दू, मुसलमानों की मजहबी भाषा नहीं है। मुगलों के समय में एक संकट भाषा के रूप में वह उत्पन्न हुई। इस्लाम के साथ उसका रत्तीभर का भी सम्बन्ध नहीं है। पवित्र कुरान अरबी में लिखा है। अतः मुसलमानों की अगर कोई मजहबी भाषा हो सकतीं है तो वह अरबी ही होगी। ऐसा होते हुए भी आज उर्दू का इतना आग्रह क्यों? इसका कारण यह है कि इस भाषा के सहारे वे मुसलमानों को एक राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित करना चाहते हैं। यह सम्भावना ही नहीं एक निश्चित तथ्य है कि इस तरह की राजनीतिक शक्ति देश-हित के विरुद्ध ही जाएगी।

कुछ मुसलमान कहते हैं कि उनका राष्ट्र-पुरुष रुस्तम है। सच पूछा जाय, तो मुसलमानों का रुस्तम से क्या सम्बन्ध? रुस्तम तो इस्लाम के उदय के पूर्व हुआ था। वह कैसे उनका राष्ट्र-पुरुष हो सकता है? और अगर वह हो सकता है तो प्रभु रामचन्द्र जी क्यों नहीं हो सकते? मैं पूछता हूं कि आप भारत का यह इतिहास स्वीकार क्यों नहीं करते?

पाकिस्तान ने पाणिनी की ५ हजारवीं जयन्ती मनाई। इसका कारण क्या था? इसका कारण यह था कि जो हिस्सा पाकिस्तान के नाम से पहचाना जाता है, वहीं पाणिनी का जन्म हुआ था। यदि पाकिस्तान के लोग गर्व के साथ कह सकते हैं कि पाणिनी उनके पूर्वजो में से एक है, तो फिर भारत के – हिन्दूमुसलमान भी एक हैं।

मैं उन्हें 'हिन्दूमुसलमान' कहता हूं। वे पाणिनी, व्यास, वाल्मीकि, राम, कृष्ण आदि को अभिमानपूर्वक अपने महान पूर्वज क्यों नहीं मानते?

हिन्दुओं में ऐसे अनेक लोग हैं, जो राम, कृष्ण आदि को ईश्वर का अवतार नहीं मानते, तो भी वे उन्हें महापुरुष मानते हैं, अनुकरणीय मानते हैं। इसलिए मुसलमान भी यदि उन्हें अवतारी पुरुष न मानें, तो कुछ नहीं बिगड़ने वाला है। परन्तु क्या उन्हें राष्ट्रपुरुष भी नहीं माना जाना चाहिए?

हमारे धर्म और तत्वज्ञान की शिक्षा के अनुसार, हिन्दू और मुसलमान समान ही हैं। ऐसी बात नहीं है कि ईश्वरी सत्य का साक्षात्कार केवल हिन्दू ही कर सकता है। अपने-अपने धर्ममत के अनुसार, कोई भी ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है।

श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य का ही उदाहरण लें। यह उदाहरण, वर्तमान शंकराचार्य के गुरु का है। एक अमरीकी व्यक्ति उनके पास आया और उसने प्रार्थना की कि उसे हिन्दू बना लिया जाए। इस पर शंकराचार्य जी ने उससे पूछा कि वह हिन्दू क्यों बनना चाहता है? उसने उत्तर दिया कि ईसाई धर्म में उसे शान्ति प्राप्त नहीं हुई है। आध्यात्मिक तृष्णा अतृप्त ही है। इस पर शंकराचार्य जी ने उससे कहा, "क्या तुमने सचमुच ईसाई धर्म का प्रामाणिकता पूर्वक पालन किया है? तुम यदि इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके होगे कि ईसाई धर्म का पालन करने के बाद भी तुम्हें शांति नहीं मिली, तो मेरे पास अवश्य आओ।"

हमारा दृष्टिकोण इस तरह का है। हमारा धर्म, धर्म-परिवर्तन न कराने वाला धर्म है। धर्मान्तरण तो प्रायः राजनीतिक अथवा अन्य हेतु से कराए जाते हैं। इस तरह का धर्म-परिवर्तन हमें स्वीकार नहीं हैं। हम कहते हैं – "यह सत्य है। तुम्हें जंचता हो तो स्वीकारो, अन्यथा छोड़ दो।"

दक्षिण की यात्रा के दौरान, मदुराई में कुछ लोग मुझसे मिलने के लिए आए। मुस्लिम-समस्या पर वे मुझसे चर्चा करना चाहते थे। मैने उनसे कहा – "आप लोग मुझसे मिलने आए, मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मुसलमानों के विषय मे मेरा दृष्टिकोण जानना चाहा, तो मैं उनसे बोला "हमें हमेशा यह बात ध्यान में रखनी होगी कि हम सबके पूर्वज एक ही हैं। और हम सब उनके वंशज हैं। आप अपने-अपने मजहब का प्रामाणिकता से पालन करें। परन्तु राष्ट्र के मामले में हम सबको एक होना चाहिए। राष्ट्र-हित के लिए बाधक सिद्ध होने वाले अधिकारों और सहूलियतों की मांग बन्द होनी चाहिए। हम हिन्दू हैं, इसलिए हम विशेष सहूलियतों या अधिकारों की कभी बात नहीं करेंगे। ऐसी स्थिति में लोग यदि कहने लगें कि हमें अलग होना है, हमें अलग प्रदेश चाहिए तो यह कतई सहन नहीं होगा।

ऐसी बात नहीं कि यह प्रश्न केवल हिन्दू और मुसलमानों के बीच ही हो। यह

समस्या तो हिन्दुओं के बीच भी है। जैसे - हिन्दू-समाज में जैन तथा अनुसूचित जातियां हैं। अनुसूचित जातियों में कुछ लोगों ने डॉ. अम्बेडकर के अनुयायी बनकर बौद्धधर्म ग्रहण किया। अब वे कहते हैं - ''हम अलग हैं''। अपने देश में अल्पसंख्यकों को कुछ विशेष राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं, इसलिए प्रत्येक गुट स्वयं को अल्पसंख्यक बताने का प्रयास कर रहा है तथा उसके आधार पर कुछ विशेष अधिकार और सहूलियतें मांग रहा है।

इससे अपने एक देश के अनेक टुकड़े हो जाएंगे और सर्वनाश होगा। हम उसी दिशा में बढ़ रहे हैं। कुछ जैन-मुनि मुझसे मिले। उन्होंने कहा, ''हम हिन्दू नहीं हैं अगली जनगणना में, हम स्वयं को जैन के नाम से दर्ज कराएंगे।'' मैंने कहा, ''आप आत्मघाती सपने देख रहे हो! अलगाव का अर्थ है देश का विभाजन और विभाजन का परिणाम होगा आत्मघात! सर्वनाश!!''

जब लोग प्रत्येक बात का विचार राजनीतिक स्वार्थ की दृष्टि से ही करने लगते हैं, तो अनेक भीषण समस्याएं उत्पन्न होती हैं। किन्तु इस स्वार्थ को अलग रखते ही अपना देश एकसंघ बन सकता है। फिर हम सम्पूर्ण विश्व की चुनौती का सामना कर सकते हैं।''

इस प्रकार के उत्तर की मैंने कभी अपेक्षा नहीं की थी। श्री गुरुजी के व्यापक दृष्टिकोण को देख मैं विस्मयविमुग्ध हो उठा। मेरे द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों में श्री गुरु जी ने देश की सभी समस्याओं का समावेश किया। साथ ही किया उसकी दुर्बलताओं की ओर अचूक निर्देश। भारतीय मुसलमानों के बारे में श्री गुरुजी ने ठीक-ठीक निदान किया, और उस पर सुझाया अपना रामबाण उपाय।

प्रश्न : भैतिकवाद और विशेषतः साम्यवाद से अपने देश के लिए खतरा पैदा हो गया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखते हैं। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि दोनों मिलकर इस संकट का मुकाबला कर सकते हैं?

उत्तर : यही प्रश्न कश्मीर के एक सज्जन ने मुझसे किया था। उनका नाम सम्भवतः नाजिर अली है। अलीगढ़ में मेरे एक मित्र अधिवक्ता श्री मिश्रीलाल के निवास स्थान पर वे मुझसे मिले। उन्होंने मुझसे कहा, ''नास्तिकता और साम्यवाद हम सभी पर अतिक्रमण हेतु प्रयत्नशीलत हैं। अतः ईश्वर पर विश्वास रखने वाले हम सभी को चाहिए कि हम सामूहिक रूप में इस खतरे का मुकाबला करें।''

मैंने कहा, ''मैं आपसे समहत हूं। परन्तु कठिनाई यह है कि हम सबने मानो ईश्वर की प्रतिमा के टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं, और हरेक ने एक-एक टुकड़ा उठा लिया है। आप ईश्वर की ओर अलग दृष्टि से देखते हैं, ईसाई अलग दृष्टि से देखते हैं। बौद्ध लोग कहते हैं कि ईश्वर है ही नहीं, जो कुछ है वह निर्वाण ही है। सब कुछ

शून्याकार ही है। हममें से अनेक लोग राम, कृष्ण, शिव आदि के रूप में ईस्वर की उपासना करते हैं। इन सबको आप यह किस तरह कह सकेंगे कि एक ही ईश्वर को माना जाए। इसके लिए आपके पास क्या कोई उपाय है?'' मुझसे चर्चा करने वाले सज्जन सूफी थे। मेरी यह धारणा थी कि सूफी ईश्वरवादी और विचारशील हुआ करते हैं। मेरे प्रश्न का उन्होंने जो उत्तर दिया, उसे सुनकर आप आश्चर्यचकित हो जाएंगे। क्योंकि उन्होंने कहा, ''तो फिर आप सब लोग इस्लाम ही क्यों नहीं स्वीकार कर लेते?''

मैंने कहा, ''फिर तो कुछ लोग कहेंगे कि ईसाई क्यों नहीं बन जाते? मेरे धर्म के प्रति मुझमें निष्ठा है इसलिए यदि मैं आपसे कहूं कि आप हिन्दू क्यों नहीं बन जाते? याने समस्या वैसी की वैसी ही रह गई। वह कभी हल नहीं होगी।

इस पर उन्होंने मुझसे कहा, ''तो फिर इस पर आपकी क्या राय है? मैं बोला, ''सभी अपने-अपने धर्म का पालन करें। एक ऐसा सर्वसारभूत तत्वज्ञान है जो केवल हिन्दुओं या केवल मुसलमानों का ही हो, ऐसी बात नहीं। इस तत्वज्ञान को आप अद्वैत कहें या और कुछ। यह तत्वज्ञान कहता है कि एक एकमेवाद्वितीय शक्ति है, वही सत्य है, वही आनन्द है, वही सृजन, रक्षण और संहार करती है। अपने ईश्वर की कल्पना उसी सत्य का सीमित अंश है। अन्तिम सत्य का यह मूलभूत रूप किसी धर्म-विशेष का नहीं, अपितु सर्वमान्य है तथा यही रूप हम सबको एकत्रित कर सकता है। सभी धर्म वस्तुतः ईश्वर की ओर उन्मुख करते हैं। अतः यह सत्य आप स्वीकार क्यों नहीं करते कि मुसलमान, ईसाई और हिन्दुओं का परमात्मा एक ही है। और हम सब उसके भक्त हैं। एक सूफी के रूप में आपको इसे स्वीकार करना चाहिए।''

इस पर उनके पास कोई उत्तर नहीं था। दुर्भाग्य से हमारी बातचीत यहीं समाप्त हो गई।

प्रश्न : हिन्दू और मुसलमानों के बीच आपसी सद्भावना बहुत है, फिर भी समय-समय पर छोटे-बड़े झगड़े होते ही रहते हैं। इस झगड़ों को मिटाने के लिए आपकी राय में क्या किया जाना चाहिए?

उत्तर : अपने लेखों में, इन झगड़ों का एक कारण आप हमेशा बताते हैं। यह कारण है गाय। दुर्भाग्य से अपने लोग और राजनीतिक नेता भी इस कारण का विचार नहीं करते। परिणामतः देश के बहुसंख्यकों में कटुता की भावना उत्पन्न होती है। मेरी समझ में नहीं आता कि गोहत्या के विषय में इतना आग्रह क्यों? इसके लिए कोई कारण दिखाई नहीं देता। इस्लाम-धर्म गोहत्या का आदेश नहीं देता। पुराने जमाने में हिन्दुओं को अपमानित करने का वह एक तरीका रहा होगा। क्या वह अब भी चलना चाहिए?

इसी प्रकार की अनेक छोड़ी-बड़ी बातें है। आपस के पर्वों-त्योहारों में हम क्यों सम्मिलित न हों? होलिकोत्सव समाज के सभी स्तरों के लोगों को अत्यन्त उल्लासयुक्त वातावरण में एकत्रित करने वाला त्योहार है। मान लीजिए कि इस त्योहार के समय किसी मुस्लिम बन्धु पर कोई गुलाल उड़ा देता है, तो इतने मात्र से क्या कुरान की आज्ञाओं का उल्लंघन हो जाता है? इन बातों की ओर एक सामाजिक व्यवहार के रूप में देखा जाना चाहिए। मैं आप पर रंग छिड़कूं, आप मुझपर छिड़कें। हमारे लोग तो कितने ही वर्षों से मोहर्रम के सभी कार्यक्रमों में सम्मिलित होते आ रहे हैं। इतना ही नहीं तो अमजेर के उर्स जैसे कितने ही उत्सवों-त्योहारों में मुसलमानों के साथ हमारे लोग भी उत्साहपूर्वक सम्मिलति होते हैं। किन्तु हमारी सत्यनारायण की पूजा में हम यदि कुछ मुसलमान बन्धुओं को आमंत्रित करें तो क्या होगा? आपको विदित होगा कि ब्रमुक के लोग उनके मंत्रिमंडल के एक मुस्लिम मंत्री को रामेश्वर के मंदिर ले गए। मंदिर के अधिकारियों, पुजारियों और अन्य लोगों ने उक्त मंत्री का यथोचित मान-सम्मान किया। किन्तु उसे जब मंदिर का प्रसाद दिया गया, तो उसने वह प्रसाद फेंक दिया। उसने ऐसा क्यों किया? प्रसाद ग्रहण करने मात्र से वह धर्मभ्रष्ट तो होने वाला नहीं था। इसी तरह की छोटी-छोटी बातें है। अतः पारस्परिक आदर की भावना उत्पन्न की जानी चाहिए।

हमें जो वृत्ति अभिप्रेत है, वह सहिष्णुता मात्र नहीं। अन्य लोग जो कुछ करते हैं उसे सहन करना सहिष्णुता है। परन्तु अन्य लोग जो कुछ करते हों, उसके प्रति आदर-भाव रखना सहिष्णुता से ऊंची बात है। इसी वृत्ति, इसी भावना को प्राधान्य दिया जाना चाहिए। हमें सबके विषय में आदर है, यही मार्ग मानवता के लिए हितकर है। हमारा वाद सहिष्णुतावाद नहीं, अपितु सम्मानवाद है। दूसरों के मतों का आदर करना हम सीखें, तो सहिष्णुता स्वयमेव चली आएगी।

प्रश्न : हिन्दू और मुसलमानों के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने के कार्य के लिए आगे आने की योग्यता किसमें हैं? राजनेता, शिक्षाशास्त्री या धर्मिक नेता में?

उत्तर : इस मामले में राजनीतिज्ञ का क्रम तो सबसे अंत में लगता है। धार्मिक नेताओं के विषय में भी यही कहना होगा। आज अपने देश में दोनों ही जातियों के धार्मिक नेता अत्यन्त संकुचित मनोवृत्ति के हैं। इस काम के लिए नितांत अलग प्रकार के लोगों की आवश्यकता है, जो लोग धार्मिक तो हों किन्तु राजनीतिक नेतागिरी न करते हों और जिनके मन में समग्र राष्ट्र का ही विचार सदैव जाग्रत रहता हो, ऐसे लोग ही यह कार्य कर सकते हैं। धर्म के अधिष्ठान के बिना कुछ भी हासिल नहीं होगा। धार्मिकता होनी ही चाहिए। रामकृष्ण मिशन को लें। यह आश्रम व्यापक और सर्वसमावेशक धर्म-प्रचार का कार्य कर रहा है। अतः आज तो इसी दृष्टिकोण और वृत्ति की आवश्यकता है कि ईश्वरोपासना विषयक विभिन्न श्रद्धाओं

को नष्ट न कर हम उनका आदर करें, उन्हें टिकाए रखें और उन्हें वृद्धिगत होने दें।

राजनीतिक नेताओं के जो खेल चलते हैं, भेदभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। जातियों, पंथों पर तो वे जोर देते ही हैं, साथ ही भाषाई और हिन्दू-मुस्लिम आदि भेदभाव भी पैदा करते हैं। परिणामतः अपनी समस्याएं अधिकाधिक जटिल होती जा रही हैं। जाति सम्बन्धी समस्या के मामले में तो राजनीतिक नेता ही वास्तविक खलनायक हैं। दुर्भाग्य से राजनीतिक नेता ही आज जनता का नेता बन बैठा है, जबकि चाहिए तो यह था कि सच्चे विद्वान, सुशील और ईश्वर के परमभक्त महापुरुष जनता के नेता बनते। परन्तु इस दृष्टि से आज उनका कोई स्थान ही नहीं है। इसके विपरीत, नेतृत्व आज राजनीतिक नेताओं के हाथों में है। जिनके हाथों में नेतृत्व है वे राजनीतिक पशु बन गए हैं। अतः हमें लोगों को जागृत करना चाहिए।

कुछ दिन पूर्व ही मैंने प्रयाग में कहा था कि लोगों को राजनीतिक नेताओं के पीछे नहीं जाना चाहिए। अपितु ऐसे सत्पुरुषों का अनुकरण करें, जो परमात्मा के चरणों में लीन हैं, जिनमें चारित्र्य है और जिनकी दृष्टि विशाल है।

प्रश्न : क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि जातीय सामञ्जस्य-निर्माण करने का उत्तरदायित्व बहुसंख्यक समाज के रूप में हिन्दुओं पर है?

उत्तर : हां, मुझे यही लगता है। परन्तु कुछ कठिनाइयों का विचार किया जाना चाहिए। अपने नेतागण सम्पूर्ण दोष हिन्दुओं पर थोपकर मुसलमानों को दोषमुक्त कर देते हैं। इसके कारण जातीय उपद्रव करने के लिए अल्पसंख्यक समाज अर्थात् मुसलमानों को सब प्रकार का प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए हमारा कहना है कि इस मामले में दोनों को अपनी जिम्मेदारियों का पालन करना चाहिए।

प्रश्न : आपकी राय में आपसी सामञ्जस्य की दिशा में तत्काल कौन से कदम उठाए जाने चाहिए?

उत्तर : इस तरह से एकदम कुछ कहना कठिन है। बहुत ही कठिन है। फिर भी सोचा जा सकता है। व्यापक पैमाने पर धर्म की यथार्थ शिक्षा देना एक उपाय हो सकता है। आज जैसी राजनीतिक नेताओं द्वारा समर्थित धर्महीन शिक्षा नहीं, अपितु सच्चे अर्थों में धर्म-शिक्षा द्वारा लोगों को इस्लाम पंथ और हिन्दू धर्म का ज्ञान कराएं। सभी धर्म मनुष्य को महान् पवित्र और मंगलमय बनने की शिक्षा देते हैं। यह लोगों को सिखाया जाए।

दूसरा उपाय यह हो सकता है कि जैसा हमारा इतिहास है वैसा ही उसे हम पढ़ाएँ। आज जो इतिहास पढ़ाया जाता है वह विकृत रूप में पढ़ाया जाता है। मुस्लिमों ने इस देश पर आक्रमण किया तो उसे हम स्पष्ट रूप से बताएं। परन्तु साथ

ही यह भी बताएं कि यह आक्रमण भूतकालीन है और विदेशियों ने किया है। मुसलमान यह कहें कि वे देश के मुसलमान हैं और ये आक्रमण उनकी विरासत नहीं है। परन्तु जो सही है उसे पढ़ाने के स्थान पर जो असत्य है, विकृत है वही पढ़ाया जाता है। सत्य को बहुत दिनों तक दबाकर नहीं रखा जा सकता। अन्ततः वह सामने आता ही है। और उससे लोगों में दुर्भावना निर्माण होती है। इसलिए में कहता हूं कि इतिहास जैसा है, वैसा ही पढ़ाया जाए। अफजल खां को शिवाजी ने मारा है, तो वैसा ही बताओ। कहो कि एक विदेशी आक्रामक और एक राष्ट्रीय नेता के तनावपूर्ण सम्बन्धों के कारण यह घटना हुई थी। यह भी बताएं कि हम सब एक ही राष्ट्र हैं, इसलिए हमारी परम्परा अफजल खां की नहीं है। परन्तु यह कहने की हिम्मत कोई नहीं करता। इतिहास के विकृतिकरण को मैं अनेक बार धिक्कार चुका हूं, और आज भी उसे धिक्कारता हूं।

प्रश्न : भारतीयकरण पर बहुत चर्चा हुई, भ्रम भी बहुत निर्माण हुए, तो क्या आप बता सकेंगे कि ये भ्रम कैसे दूर किए जा सकेंगे।

उत्तर : भारतीयता की घोषणा जनसंघ द्वारा की गई है। किन्तु इस मामले में सम्भ्रम क्यों होना चाहिए? भारतीयकरण का अर्थ सबको हिन्दू बनाना तो है नहीं।

हम सभी को यह समझ लेना चाहिए कि हम इसी भूमि के पुत्र है। अतः इस विषय में अपनी निष्ठा अविचल रहनी अनिवार्य है। हम सब एक ही मानव समूह के अंग है। हम सबके पूर्वज एक ही हैं, इसलिए हम सबकी आकांक्षाएं भी एक समान हैं - इसे समझना ही सही अर्थों में भारतीयकरण है।

भारतीयकरण का यह अर्थ नहीं कि कोई अपनी पूजा-पद्धति त्याग दे। यह बात हमने कभी नहीं कही, और कभी कहेंगे भी नहीं। हमारी तो यह मान्यता है कि उपासना की एक ही पद्धति सभी मानव जातियों के लिए सुविधाजनक नहीं है।

प्रश्न : गुरुजी आपकी बात सही है। बिल्कुल सौ फीसदी सही है। अतः इस स्पष्टीकरण के लिए मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

उत्तर : फिर भी, मुझे संदेह है कि ये बातें मैं सबके समक्ष स्पष्ट कर सका हूं या नहीं।

प्रश्न : कोई बात नहीं। आपने अपनी ओर से यह बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया है। कोई भी विचारशील और भला आदमी आपसे असहमत नहीं होगा। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि अपने देश का जातीय बेसुरापन समाप्त करने का उपाय ढूंढ़ने में आपको सहयोग दे सकें, ऐसे मुस्लिम नेताओं की और आपकी बैठक आयोजित करने का अब समय आ गया है? ऐसे नेताओं से भेंट करना क्या आप पसंद करेंगे?

उत्तर : केवल पसन्द ही नहीं करूंगा, ऐसी भेंट का मैं स्वागत करूंगा। □

सही पहचान

- श्री गुरुजी

राष्ट्रीय

१. साधारणतः अपने देश और उसकी परम्पराओं के प्रति, उसके ऐतिहासिक महापुरुषों के प्रति, उसकी सुरक्षा और समृद्धि के प्रति जिनकी अव्यभिचारी (unadlterated) एवं एकान्तिक निष्ठा हो वे जन राष्ट्रीय कहे जाएंगे।

साम्प्रदायिक

२. वे लोग साम्प्रदायिक कहे जाएंगे, जो देश के प्रति निष्ठा रखते हुए भी शेष समाज से अलग, अपने पंथ, बिरादरी, भाषा और तथाकथित जाति के आधार पर सोचते हों, और अपने सीमित लाभ एवं राजनीतिक सत्ता के उपभोग के निमित्त ऐसे विशेष अधिकारों एवं सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हों जो समाज के सर्वसामान्य व्यक्तियों को उपलब्ध न हों ओर इस उद्देश्य से वे दूसरों के साथ घृणा एवं द्वेष भी करते हों, उनका विरोध करते हों तथा कभी-कभी हिंसात्मक उपायों का भी अवलम्बन करते हों।

शत्रु

३. (क) वे लोग शत्रु कहें जाएंगे, जिनकी निष्ठा विभक्त हो और जो ऊपर (१) में बताई गई व्यापक निष्ठा से भिन्न किसी अन्य निष्ठा को लेकर चलते हों और इन निष्ठाओं के संघर्ष में, देश के हितों की अवहेलना करते हों, अथवा उनके प्रति उदासीन रहते हों तथा अपनी अन्य आस्थाओं को वरीयता देते हों।

(ख) जो लोग अपने को बाहर से आने वाले, हमलावर, विजेता और अभी हाल तक स्वयं को देश के शासक एवं मालिक मानते हैं, वे सब विदेशी तो स्पष्टतः हैं ही, किन्तु यदि वे फिर से यहां के शासक बनने की आकांक्षा लेकर चलें तो फिर वे शत्रु भी कहे जाएंगे।

राष्ट्रविरोधी

४. राष्ट्रीय होते हुए भी यदि कुछ लोग विकारवश, राष्ट्र से अलग होने तथा एक भिन्न एवं प्रायः विरोधी राजसत्ता के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हों, तो वे राष्ट्र-विरोधी कहे जाएंगे।

राष्ट्रद्रोही

५. (क) उपर्युक्त (४) में वर्णित वे लोग जो कि अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए ३ (क) व (ख) के साथ मिलाने में न हिचकिचाएं और जो इस उद्देश्य

से किसी विदेशी शक्ति के साथ गठबंधन करने का अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष प्रयत्न करें तो वे राष्ट्रद्रोही कहे जाएंगे।

(ख) वे राजनीतिक दल जो सत्ता-प्राप्ति के लिये या सत्ताधीश बने रहने के लिए, उपर्युक्त ३ (क) व (ख) तथा (४) के साथ सहयोग करें अथवा उनके साथ वरीयता का व्यवहार करें तो वे ५ (क) के समान ही माने जा सकते हैं।

(ग) वे राजनीतिक दल जो किन्ही विदेशी सत्ताओं की आधारभूत विचारधारा को मानते हों, अपने देश की तुलना में ऐसी संस्थाओं को प्राथमिकता देते हों और अपने देश पर उनका आक्रमण होने पर भी उसे सहन करें, उसके विषय में सफाई दें, उसे न्यायोचित ठहराएं या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपने देश के विरुद्ध उसमें सहायक हों, तो वे देशद्रोही और शत्रु दोनों ही माने जाएंगे।

दुर्भाग्यवश आज अपनी पवित्र मातृभूमि में उपर्युक्त सभी प्रकार के लोग विद्यमान हैं। उनका ठीक और निर्भीक ज्ञान, एक संगठित और सशक्त राष्ट्र-जीवन बनाने के लिए आवश्यक है। इस सब वर्गों में अपवाद हो सकते हैं। राष्ट्रीय जनों में कुछ राष्ट्रद्रोही व्यक्ति और अन्य जनों में देशभक्त व्यक्ति मिल सकते हैं। परन्तु व्यक्तिगत गुणों में और जनसमूह की प्रवृत्ति में, हमें अंतर समझना चाहिए। यह सामान्य अनुभव है कि जब जन-भावनाओं का भारी उभाड़ उमड़ता है तो अन्य जनों में विद्यमान देशभक्त टिक नहीं पाते। हमें इन जनसमूहों के इस मानस पर विचार करना होगा, और देश के हितों का सर्वोपरि लक्ष्य सामने रखते हुए उनके साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक आधार पर व्यवहार करना चाहिए। विकृति या शत्रुता के व्यक्तिगत मामलों का विचार करने के लिए, सर्वमान्य कानून पर्याप्त रहता है।

उपर्युक्त (१) के हित सर्वोपरि हैं और उनकी रक्षा सदा और सर्वोपरि होनी चाहिए। (२) व (४) के साथ विवेक और शक्ति, सहानुभूति और प्रेम के साथ व्यवहार करना चाहिए जिससे कि देश और राष्ट्र के लिए बाधक और घातक विघटनकारी कार्यों से बचाए जा सकें। अन्य को सभी सम्भव उपायों से दृढ़तापूर्वक दबाना चाहिए।

हिंदू

१. हम हिंदू हैं। प्राचीन काल से हिन्दुस्थान में रहते आए हैं। हमारा महाविशाल समाज है। इसमें विभिन्नताएँ होंगी, किन्तु हम सब एक हैं। पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक यह हमारा देश है। इस देश और समाज से हमारी

श्रद्धा संबद्ध है। लोग हिंदू की व्याख्या पूछते हैं। मैं तो कहूंगा कि हम हिंदू हैं और हम जिसे कहेंगे वह हिंदू है। जगद्गुरू श्रीशंकराचार्य के समान हमें भी शंख फूंककर कहना होगा कि जिसके कान में शंखध्वनि पड़ी, वह हिंदू हो गया। आज तो हम इतना ही जानते हैं कि हम हिंदू हैं। हमारी समान श्रद्धाएं हैं, परंपराएं हैं, श्रेष्ठ महापुरुषों के समान जीवन आदर्श हैं।

२. एक हजार वर्ष पूर्व यहां हिंदू के अतिरिक्त किसी दूसरे का नाम तक नहीं था। अनेक पंथ, संप्रदाय, भाषाएं, जातियां, राज्य रहे हों, किंतु सब हिंदू ही थे। शक, हूण, ग्रीक आदि आए, किन्तु उन्हें हिंदू बनना पड़ा। वे हमे भ्रष्ट करने में असफल रहे। बल्कि हमने ही उन्हें पूर्णरूपेण आत्मसात् कर लिया। पहले जहां सब ओर हिंदू ही थे, वहां आज हमारे ही अंग-प्रत्यंग को खाकर हमारे समाज से अलग होकर अपना प्रसार करनेवाले कई कोटि अहिंदू हैं। इस दृष्टि से हिंदू समाज का ह्रास क्या हमारी आँखों के सामने है?

३. 'हिंदू' के सम्बन्ध में कुछ लोग घिसे-पिटे पुराने आरोप दोहराते रहते हैं। आरोपों को सुनकर अपने समाज के लोग घबराते भी हैं। इस राष्ट्रजीवन को किसी अन्य पर्यायी शब्द से बोलने के लिये लोग सलाह भी देते हैं। परंतु क्या पर्याय लेने से मूल अर्थ बदलेगा? जैसे हमारे आर्यसमाजी बंधु कहते हैं कि आर्य कहो। 'आर्य' का भी मतलब वही निकलेगा। कुछ लोग 'भारतीय' शब्द का प्रयोग करने की बात कहते हैं। 'भारत' को कितना ही तोड़-मरोड़कर कहा जाए तो भी उसमें अन्य कोई अर्थ नहीं निकल सकता। अर्थ केवल एक ही निकलेगा 'हिंदू'। तब क्यों न 'हिंदू' शब्द का ही असंदिग्ध प्रयोग करें। सीधा-सादा प्रचलित शब्द 'हिंदू' है।

४. हिंदू शब्द हमारे साथ विशेष रूप से हमारे इतिहास के गत एक सहस्र वर्षों के संकटपूर्णकाल से जुड़ा रहा है। पृथ्वीराज के दिनों से लेकर हमारे समस्त राष्ट्र-निर्माताओं, राज्य-वेत्ताओं, कवियों और इतिहासकारों ने 'हिंदू' शब्द का प्रयोग हमारे जन-समाज और धर्म को अभिहित करने के लिये किया है। गुरु गोविन्दसिंह, स्वामी विद्यारण्य और शिवाजी जैसे समस्त पराक्रमी स्वतंत्रता-सेनानियों का स्वप्न 'हिंदू-स्वराज्य' की स्थापना करना ही था। हिंदू शब्द अपने साथ इन समस्त महान जीवनों, उनके कार्यों और आकांक्षाओं की मधुर गंध समेटे हुए है। इस कारण यह एक ऐसा शब्द है जो संघ-रूप से हमारी एकात्मता, उदात्तता और विशेष रूप से हमारे जन-समाज को व्यंजित करता है।

५. यह हिंदूराष्ट्र है, इस राष्ट्र का दायित्व हिंदू समाज पर ही है, भारत का दुनिया में सम्मान या अपमान हिंदुओं पर ही निर्भर है। हिंदूसमाज का जीवन वैभवशाली

होने से ही इस राष्ट्र का गौरव बढ़ने वाला है। किसी के मन में इस विषय में कुछ भ्रांति रहने का कारण नहीं है।

राष्ट्र

१. राष्ट्र क्या है? यह ज्ञान हुए बिना राष्ट्रभक्ति पैदा नहीं होती। राष्ट्र-भक्ति की भावना के बिना स्वार्थ को तिलांजलि देकर राष्ट्र के लिये परिश्रम करना संभव नहीं है। इसलिये विशुद्ध राष्ट्र-भावना से परिपूर्ण, श्रद्धायुक्त तथा परिश्रमी लोगों को एक-सूत्र में गूँथना, एक प्रवृत्ति के लोगों की परंपरा निर्माण करनेवाला संगठन खड़ा करना तथा इस संगठन के बल पर राष्ट्र-जीवन के सारे दोष समाप्त करने का प्रयत्न करना मूलभूत और महत्त्वपूर्ण कार्य है।

२. यह एक सर्वविदित सत्य है कि जब राष्ट्र-जीवन में दासता आती है, तब जनसाधारण के परम्परागत सद्‌गुणों का ह्रास होने लगता है। यह दासता मनुष्य को अनेक प्रकार के दुर्गुणों में प्रवृत्त करती है। हम एक-दूसरे के साथ विश्वासघात करते हैं, असत्य भाषण करते हैं, असत्य आचरण करते हैं, किसी भी प्रकार का पाप-कर्म करने में हमें हिचक नहीं होती।

३. जब राष्ट्र में परकीय आदर्श और परकीय संस्कृति को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और अपनी मूल सांस्कृतिक भावना नष्ट हो जाती है, तब यह समझना चाहिये कि यह राष्ट्रीय जीवन का अंत है।

४. राष्ट्र के संघर्ष में सामर्थ्य का प्रकटीकरण दो प्रकार से होता है। एक तो राष्ट्र की सेना की जो शक्ति है उससे, यानि क्षात्रबल से और दूसरा समाज के अंदर की प्रखर तेजस्वी और सर्वस्वार्पण की सिद्धता से युक्त शक्ति से। इन दो शक्तियों से ही कोई राष्ट्र अजेय और संपन्न बनता है। क्षात्रवृत्ति से भरी हुई अतीव तेजस्वी सैनिक शक्ति और प्रखर राष्ट्रभक्तियुक्त सुव्यवस्तित समाज से अजेय राष्ट्र का निर्माण होता है।

५. जिस समाज में जन्म से प्राप्त संस्कारों के कारण अभिजात देशभक्ति की भावना व्यक्ति के अंतःकरण में अंकुरित होती है, संवर्धित होती है, घर का काम छोड़कर राष्ट्र के लिए अपना सब कुछ अर्पण करने की वृत्ति रहती है और इस कारण एक सूत्रबद्ध जीवन का निर्माण होता है, उस समाज में चुनाव, राजनीति आदि बातें समाज का सुख-सौंदर्य वृद्धिगत करने में करणीभूत होते हैं, जिस प्रकार बलिष्ठ शरीर पर ही वस्त्रालंकार आदि शोभायमान होते हैं। जिसके हाथ-पैर लकड़ी के समान सूखे हों, उसके शरीर पर वह शोभा नहीं पाते अथवा जिस प्रकार कोई रोगग्रस्त शरीर पकवान नहीं पचा सकता, अन्न पचाने के लिये बलिष्ठ व निरोग शरीर आवश्यक होता है। उसी प्रकार शक्तिशाली, निरोग,

पुष्ट राष्ट्रजीवन हो, तभी चुनाव या राजनीति सदृश आवरण शोभा पाते हैं। उनके कारण उस राष्ट्र का सुख-सौंदर्य बढ़ता है, वे सब उसके लिये उपकारक सिद्ध होते हैं।

मातृभूमि

१. जिस बात में हमारी अत्यन्त श्रद्धा है और जिसमें श्रद्दा रखना राष्ट्रीयता का परिचायक भी है, वह यह है कि यह विशाल भूमि हमारी मातृभूमि है। हम सब इसके पुत्र हैं। इसकी सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है तथा इस भूमि के कारण राष्ट्र के नाते जो हमारा जीवन सम्भव हुआ है, उस जीवन की कीर्ति अपनी सेवा से फैलाने का स्वाभाविक कर्त्तव्य हमने अपने सामने रखा है।

२. कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसा देश, जिसकी धूलि का एक-एक कण दिव्यता से ओतप्रोत है, हमारे लिये पावनतम है, हमारी पूर्ण श्रद्धा का केन्द्र है। यह श्रद्धा की अनुभूति सम्पूर्ण देश के लिये है, उसके किसी एक भाग मात्र के लिये नहीं। शिव का भक्त काशी से रामेश्वरम जाता है, और विष्णु के विभिन्न आकारों एवं अवतारों का भक्त, इस सम्पूर्ण देश की चतुर्दिक यात्रा करता है। यदि वह अद्वैतवादी है तो जगद्‌गुरु शंकराचार्य के चारों आश्रम, जो प्रहरी के समान देश की चारों सीमाओं पर खड़े हैं, उसे चारों दिशाओं में ले जाते हैं। यदि वह शाक्त है - उस शक्ति के पुजारी की जो दिव्य मां है, विश्व की तीर्थयात्रा के लिये बावन स्थान हैं, जो बलूचिस्तान में हिंगलाज से असम में कामाक्षी पर्यन्त और कश्मीर में ज्वालामुखी से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैले हुए हैं, वहां-वहां वह जाता है इसका यह अर्थ है कि यह देश विश्व की जननी का दिव्य एवं व्यक्त स्वरूप है। □

एकमेव साधना : राष्ट्र साधना

- श्री गुरुजी

भारतीय तत्त्वज्ञान की स्वामी रामकृष्ण के जीवन काल में उनके निवास स्थान पर काली मंदिर में साधना होती थी। वहां भिन्न-भिन्न साधु आते थे। एक बार ऐसे ही एक साधु वहां आये। उनके पास वृहद् आकार का ग्रंथ था। प्रातः जागकर वे गंगा-स्नान करते और घंटो तक उस ग्रंथ का अध्ययन करते बैठते। उनके संभाषण में सब प्रकार का ज्ञान प्रकट होता था। ऐसा लगता था कि वे प्रकांड पंडित हैं और प्रत्येक बात का उन्होंने सूक्ष्म अध्ययन किया है। अन्यों की यह धारणा बनी कि उनके पास सदा रहने वाले उस बड़े ग्रंथ में ही वह सारा ज्ञान समाया हुआ है। परंतु जिस प्रकार एक कृपण अपनी सम्पत्ति की रक्षा करता है और अपने धन को किसी को छूने नहीं देता, उसी प्रकार वह साधु अपने ग्रंथ को किसी को भी छूने नहीं देते थे। उस ग्रंथ में ऐसा कौन सा ज्ञान-भंडार भरा पड़ा हुआ है यह जानने की स्वाभाविक जिज्ञासा उन युवकों के मन में जागृत हुई। एक दिन साधु वह ग्रंथ छिपाकर स्नान करने गए। मौका देखकर उन युवकों ने वह ग्रंथ लिया और ढूंढने लगे कि उसमें क्या है। अथ से इति तक हर पृष्ठ उन्होंने देखा। पर हर पृष्ठ पर केवल 'ओम्' एक मात्र अक्षर लिखा हुआ था। यह देखकर वे बड़े निराश हुए। जब साधु लौटे, उन्होंने ग्रंथ नियत स्थान पर नहीं देखा, तब वे बहुत नाराज हुए। उन्होंने युवकों से ग्रंथ लौटाने को कहा। ग्रंथ के साथ इस प्रकार अयोग्य, अनादरपूर्वक व्यवहार करना उचित नहीं है, यह भी उन्होंने समझाकर बतलाया। तब उन लोगों ने कहा ''महोदय! आपके ग्रंथ में कुछ भी तो नहीं है। सभी पृष्ठों पर एक ही अक्षर लिखा हुआ है। तत्त्वज्ञान की चर्चा नहीं, जीव-जगत् सम्बंध पर चर्चा नहीं, वेद-वेदांत का पृथक्करण नहीं। अतः कागज का यह निरर्थक ढेर पास क्यों रखते हो?'' साधु ने उन्हें बताया, ''बच्चों! यही ग्रंथ मेरा परब्रह्म है। जीवन भर यही पढ़ता रहूंगा। इससे ही मेरे अज्ञान का, सभी संदेहों का निवारण होता है। इसी में - इसके ओंकार में - मुझे पूर्णता का अनुभव होता है। बाकी सारा अक्षरों का खेल है। इसीमें मैं संतुष्ट हूं।''

ऐसी विचित्र दीखनेवाली श्रद्धा तथा उससे परिचालित बुद्धि के कारण ही मुझे भी अन्य बातों में रस-आकर्षण नहीं लगता है। एक बार मन में समष्टि का साक्षात्कार हो गया, उसके अनुसार हृदय की रचना हो गई, गुण समुच्चय की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशीलता आ गई, अंतःकरण विशाल होकर राष्ट्र के व्यक्ति मात्र के प्रति आत्मीयता का भाव उत्पन्न हो गया कि उसके आधार पर राष्ट्रीय जीवन का सम्यक् दर्शन होकर प्रत्येक व्यक्ति के सुख-दुःख की चिंता करते हुए अपने चारित्र्य का विशिष्ट स्तर निर्माण करने की ही प्रवृत्ति जागृत होती है। इस प्रवृत्ति से

(स्वयंस्फूर्त) बाह्य नियंत्रण की साधना के बिना, स्नेह अंतःकरण में धारण कर राष्ट्र-जीवन की ओर देखना और स्वतः का ही नहीं तो संपूर्ण समाज की, इसी पीढ़ी के ही नहीं तो आगे आने वाली प्रत्येक पीढी के अंतःकरण में भी वही समष्टि-भावना, निःस्वार्थ, स्वयंप्रेरित, राष्ट्रभावना बैठी रहेगी, वह धारा काल के अंत तक बहती रहेगी, यही सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन-चैतन्य का, राष्ट्र की प्रत्येक समस्या और संकट का सारभूत उत्तर है, यह एक बार ज्ञात हो गया कि शेष छोटी-मोटी बातों का उनके सभी पहलुओं (प्रॉस कॉन्स) का अधिक विवेचन, विचार करते बैठने की आवश्यकता नहीं है। परंतु इस एक राष्ट्रीय जीवन के मूलभूत महान सत्य का साक्षात्कार अंतःकरण में होना चाहिए, उस पर दृढ़ श्रद्धा और उसके अनुसार जीवन में परिवर्तन करने का निश्चय निर्माण होना चाहिए, फिर मन को अन्य बातों का स्पर्श भी नहीं होता। अंतःकरण में निर्माण हुआ यह स्नेह संपूर्ण राष्ट्र और समाज को व्याप्त करता हो, उस स्नेह में से स्वाभाविकतः व्यक्ति-विषयक स्वार्थ की चिंता न रहती हो, उसके लिए समाज से स्थापित अपने सम्बन्धों में से स्नेहमय अंतःकरण और अन्य समष्टि गुणों का प्रकटीकरण होता हो, आदर्श समष्टि के जीवन का जीवन में साक्षात् परिचय होता हो, तो ऐसी अवस्था प्राप्त होगी कि निर्माण होने वाले प्रत्येक प्रश्न का उत्तर मिलेगा।

रचनात्मक कार्य

विगत ५० वर्षों से अपने देश में 'कन्स्ट्रक्टिव्ह वर्क', रचनात्मक कार्य, की रट लगाई जा रही है। परंतु विचार करने पर यह दिखाई देता है कि 'कन्स्ट्रक्शन' की अपेक्षा 'डिस्ट्रक्शन' ही अधिक हुआ है। इसका कारण यह है कि प्रथम रचना मनुष्यों की हो, इसकी ओर दुर्लक्ष किया गया। यह तो 'पास में पैसा नहीं और चले घर बनाने' जैसी अव्यावहारिक बात हुई। यदि सुव्यवस्थित, सुसंगठित, अनुशासनबद्ध शक्ति हो, संगठन के घटक केवल 'दक्ष-आरम्' के सिवाय अन्य भी अनेक बातें अपनी बातचीत और आचरण से समाज को सिखाने के लिए सक्षम हों–इस प्रकार का प्रथम 'कन्स्ट्रक्शन' ठीक हुआ हो, तो ही तथाकथित अन्य काम हो सकते हैं। यह संभव है कि कुछ लोग संभाषण-पटु न हों, परंतु उससे कुछ बाधा नहीं आती। आचरण से वे अपने विचार प्रकट कर सकते हैं और समाज पर उनका प्रभाव पड़ सकता है। घंटा भर विचार करने पर भी जो मुख से एक सरल वाक्य भी बोल नहीं पाते हैं, जिन्हें शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है; परंतु जिनके हृदय पर राष्ट्रीय भावना, भारत की एकात्मता, कार्य की आवश्यकता, उसके लिए आवश्यक व्यवहार के परिपूर्ण संस्कार हुए हैं, वे भी जनता के श्रद्धाभाजन बन सकते हैं।

एक स्थान पर अपना ऐसा ही एक दो-तीन कक्षा पढ़ा हुआ स्वयंसेवक गया तथा उसने कार्य प्रारंभ करने की चेष्टा की। वहां कुछ वाकपटु विरोधी भक्तों ने पहले ही

घर-घर घूमकर संघ को सब प्रकार से बदनाम करने का उद्योग किया था। इतनी उद्यमशीलता अच्छे कार्य के लिए अपने देशवासियों ने दिखाई होती तो अपने देश का चित्र कब का बदल चुका होता। अपने कार्यकर्ता ने घर-घर जाकर स्वयंसेवक जुटाना प्रारंभ किया। परन्तु बिरोधी लोग प्रश्न आदि पूछने की दृष्टि से गांव वालों को उत्तम पाठ पढ़ा चुके थे। अपना कार्यकर्ता सीधा था। वह चालाकी नहीं जानता था। लोग नाना तरह के प्रश्न पूछने और उपहास करने लगे। कार्यकर्ता के सामने विकट समस्या खड़ी हो गई। परन्तु उसकी कार्य पर निष्ठा थी। वह विद्वत्तापूर्ण संभाषण नहीं कर सकता था। उसने लोगों से कहा कि वे कुछ दिनों तक उसके साथ कबड्डी खेलने के लिए आयें, फिर वह उनके सभी प्रश्नों के उत्तर देगा। शाखा शुरू हो गई। खास बात यह हुई कि उस कार्यकर्त्ता पर उसके साथ खेलने वालों की धीरे-धीरे श्रद्धा बैठने लगी। सबको वह प्रिय हुआ। यह कैसे हुआ? उसका व्यवहार इतना स्नेहपूर्ण था, उसका चारित्र्य इतना उत्तम था कि लोगों के मन में उसके प्रति अपने आप आदर निर्माण हुआ, बोलने की आवश्यकता नहीं पड़ी। लोगों को उसके आचरण से दिखाई दिया कि उसे विद्वत्तापूर्ण भाषण करना भले न आता हो, परंतु इसमें अनेकविध गुण हैं, चारित्र्य है। इसके विपरीत विरोधी प्रचार करने वालों का स्वार्थी और दुर्गुण-सम्पन्न जीवन बड़े–बड़े शब्दों की आड़ में नहीं छिप सका। उन्हें यह भी दिखाई दिया कि उसके पास जीवनादर्श, त्याग आदि विलोभनीय गुण हैं, स्नेहयुक्त व्यवहार है तथा कार्य पर ही उसकी दृष्टि केन्द्रित है। इसलिए शब्दों और आचरण से चारित्र्य गुण, जिनका अन्यत्र अभाव है, हमने प्रकट किए, कार्य का प्रभाव और विस्तार बढ़ाया तो ही तथाकथित रचनात्मक 'कन्स्ट्रक्टिव्ह' कार्य भी हो सकता है।

हमारे समाज का चिर जीवन

हम जरा विश्व इतिहास के पृष्ठ पलटें। हम देखने का प्रयत्न करें कि किसी भी देश के अजर-अमर राष्ट्र-जीवन निर्माण करने में क्या राज्य सत्ता के प्रयोग के थोथे विचार और तत्क्षण फलेच्छा ने सचमुच सहायता की है? भूतकाल में ऐसे अनेक साम्राज्य रहे जो पूर्णरूपेण राज्यसत्ता पर निर्भर थे। उदाहरण के लिए फारस अपनी सभी प्रकार की सुरक्षा एवं प्रगति के लिए पूर्णतया सम्राट पर ही निर्भर था। सम्राट की सत्ता सर्वोच्च थी, वह जनजीवन के सभी पहलुओं का नियमन करता था। धर्म का निर्णायक भी वही था। कुछ समय के लिए वहां के लोग निश्चिंत और सुखी थे। किन्तु उनके सम्पूर्ण राष्ट्र-जीवन का प्रासाद अरब आक्रमण के एक ही धक्के में धराशायी हो गया। रोम और यूनान की भी यही गति हुई। यह इस कारण नहीं हुआ कि इन साम्राज्यों के पास सम्पत्ति अथवा उत्तम प्रबन्ध या सेना का अभाव था, वस्तु वे सभी चीजें सम्राट की राजनीतिक सत्ता की बालू की नींव पर खड़ी थीं। और जैसे ही अल्पकाल के लिए भी उस राजसत्ता का ध्वंस हुआ उनकी सम्पूर्ण सभ्यता, उनका पंथ और उनकी राष्ट्रीयता भी धमाके के

साथ ऐसे धराशायी हो गए कि विश्व-मंच पर पुन: कभी उसका प्रकट होना भी असंभव हो गया। एक के बाद दूसरे कई देशों का आत्मपतन हुआ, वे सब इस्लाम के सामने झुक गए और इस प्रकार सदैव के लिए मुस्लिम राष्ट्र बन गए।

किन्तु हमारे देश की कहानी एक नितान्त भिन्न प्रकार का चित्र प्रस्तुत करती है। हमारे समाज को भी अत्यन्त बर्बर जातियों के इस प्रकार के अगणित आक्रमणों का सामना करना पड़ा था। हमारे समाज पर इन शत्रुशक्तियों का कुछ काल के लिए राजनीतिक आधिपत्य भी बना रहा। कभी-कभी तो यह आधिपत्य कतिपय शताब्दियों तक चला। रावण के काल से लेकर अब तक कई बार अधर्म ने अपनी सम्पूर्ण विनाशकारी नग्न शक्तियों से यहां शासन किया है। उस अंधकारपूर्ण समय में जब औरंगजेब शासन करता था, समर्थ रामदास के जैसे महान् वीर संत तक के सकरुण उद्‌गार थे कि हिन्दू समाज को पूर्ण विनाश से बचाने का सामर्थ्य केवल परमात्मा के अवतार में ही है। तत्पश्चात् धूर्त अंग्रेज ने भी हमारे राष्ट्र-जीवन को उच्छिन्न करने के भरपूर प्रयास किए। आज भी अधार्मिक तत्वों का ही उत्कर्ष है। किन्तु इन भयंकर संकट बेलाओं का सामना कर हमारा समाज आज भी जीवित है। बार-बार वह अपनी भस्म में से उठ खड़ा हुआ तथा दुष्ट शक्तियों के फांसी के फंदे को नष्ट कर इसने धर्म-राज्य की स्थापना की। वही गौरवशाली परम्परा आज भी सदैव की नाईं आदर्शवाद और राष्ट्रीय नव-यौवन के सामर्थ्य से युक्त अखंड, अजस्र गति से चली आ रही है। यह चमत्कार कैसे घटित हुआ? इस अमरता का गूढ़ रहस्य किस बात में है? भीषण से भीषण विष प्रहार के बाद भी मृत्यु को चुनौती देने की समाज की चिर-जीवन क्षमता का रहस्य क्या है?

यह बात अति स्पष्ट है कि हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व का आधार राजकीय सत्ता कभी नहीं रही। अन्यथा हमारा भी भाग्य उन राष्ट्रों से अच्छा नहीं होता जो आज केवल अजायबघर की दर्शनीय वस्तु मात्र रह गए हैं। राजकीय सत्ताधारी हमारे समाज के आदर्श कभी नहीं थे। वे हमारे राष्ट्र-जीवन के आधार के रूप में कभी स्वीकृत नहीं हुए। सम्पत्ति एवं सत्ता के ऐहिक प्रलोभनों के ऊपर उठे हुए और समग्र भावेन सुखी, श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न एवं एकात्मता से युक्त समाज की स्थापना के लिए स्वयं को समर्पित करने वाले संत-महात्मा ही उसके पथ-प्रदर्शक रहे हैं। वे धर्मसत्ता का प्रतिनिधित्व करते थे। उस उच्चतर नैतिक सत्ता का राजा तो एक उत्कृष्ट अनुगामी मात्र था। अनेक बार विपरीत परिस्थितियों में एवं आक्रामक शक्तियों के कारण अनेक राज्य सत्ताओं ने धूल चाटी। किन्तु धर्मसत्ता हमको छिन्न-बिच्छिन्न होने से सदैव बचाती रही। □

प्रेरक घटनाएं

राष्ट्रीयता की कसौटी

एक बार, एक विख्यात अमेरिकी प्राध्यापक ने श्री गुरुजी से प्रश्न किया, ''मुस्लिम एवं ईसाई भी इसी देश के हैं, तब आप उन्हें अपना क्यों नहीं मानते?

इसके उत्तर में श्री गुरुजी ने उक्त प्राध्यापक से एक प्रतिप्रश्न किया। उन्होंने पूछा - ''मान लीजिए हमारे देश का एक नागरिक अमेरिका जाता है। वह वहीं का स्थायी निवासी हो जाता है। उसे अमेरिकी नागरिकता तो चाहिए, किन्तु वह अब्राहिम लिंकन, जॉर्ज वाशिंग्टन, जेफरसन आदि को राष्ट्रपुरुष मानने के लिए तैयार नहीं है तो ऐसे व्यक्ति को क्या आप अमेरिका का राष्ट्रघटक मानेंगें।''

प्राध्यापक महोदय ने क्षणार्द्ध का भी विलम्ब किए बिना उत्तर दिया ''नहीं''! इस पर श्री गुरुजी ने कहा, ''हमारे देश में भी यदि यही कसौटी लगाई जाए तो उसमें क्या गलती होगी। इस देश के वीरपुरुषों को, राष्ट्रपुरुषों को, राष्ट्रगीतों को जो नहीं मानते, उन्हें हम अपना क्यों कहें? मानसिक निष्ठा को ही संपूर्ण जगत में राष्ट्रीयता की सर्वमान्य कसौटी माना गया है।''

सच्ची देशभक्ति

किसी भी लोकतान्त्रिक देश में राजनीतिक दलों में परस्पर मतभेद होना स्वाभाविक ही है। पर ये मतभेद अपने देश तक ही सीमित रहे, तो अच्छा है।

बात उस समय की है जब श्री नेहरू भारत के प्रधानमंत्री थे। एक बार वे विदेश गये, तो वहां कुछ भारतीयों ने उन्हें काले झंडे दिखाये और मुर्दाबाद के नारे लगाये। श्री गुरुजी को इस समाचार से बहुत कष्ट हुआ। यद्यपि वे नेहरू जी की नीतियों के घोर विरोधी थे; पर प्रधानमंत्री का देश से बाहर अपमान हो, यह उन्हें स्वीकार नहीं था। उन्होंने इसी संदर्भ में चर्चिल का एक उदाहरण सुनाया।

ब्रिटेन में उन दिनों चर्चिल प्रधानमंत्री नहीं थे। उनके दल की चुनाव में पराजय हो गयी, अतः वे विपक्ष के नेता बनाये गये। इसी नाते वह एक बार अमरीका गये। वहां पत्रकारों ने उनसे सरकार के बारे में प्रश्न किये। उनका विचार था चर्चिल सरकार के विरुद्ध बोलेंगे, पर चर्चिल ने स्पष्ट कहा : अपने देश में भले ही मैं विरोधी दल का नेता हूं; पर देश से बाहर मैं सरकार का समर्थक हूं। इसलिए मैं अपनी सरकार के विरुद्ध कुछ नहीं बोलूगा।

यह उदाहरण बताता है कि देशभक्ति का सही अर्थ क्या है।

सबल शरीर आवश्यक है

हमें इस शरीर से ही सब कार्य करने हैं, इसलिए यह खूब बलवान होना चाहिए। इस संदर्भ में श्री गुरूजी यह घटना सुनाते थे।

एक बार स्वामी विवेकानंद रेल से कहीं जा रहे थे। उनके एक भक्त ने उन्हें प्रथम श्रेणी का टिकट खरीदकर दिया था। उन दिनों प्रायः प्रथम श्रेणी में अंग्रेज या अंग्रेजों के चाटुकार आदि ही सफर करते थे। उस डिब्बे में दो अंग्रेज भी थे।

उन अंग्रजों ने जब भगवा कपड़े पहने एक संन्यासी को देखा, तो अंग्रेजी में उनके बारे में आपस में गन्दी-गन्दी बातें करने लगे। स्वामी जी को अच्छी अंग्रेजी आती थी। वे सब समझ रहे थे, पर उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा।

कुछ देर बाद जब एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी, तो स्वामी जी ने पास से गुजर रहे स्टेशन मास्टर से अंग्रेजी में बात करते हुए अपने लिए पानी मंगवाया। यह देखकर वे अंग्रेज हैरान रह गये। जब गाड़ी चली, तो वे स्वामी जी से बात करने लगे।

– आपको अंग्रेजी आती है?

– हां, कुछ-कुछ आती है।

– तब तो हम जो बोल रहे थे, वह आप समझ रहे होंगे?

– हां, अच्छी तरह समझ रहा था।

– फिर आपने उसका विरोध नहीं किया?

स्वामी जी ने हंसकर जवाब दिया - मेरा मूर्खों से मिलने का यह पहला अवसर नहीं है।

यह सुनकर वे आगबबूला होकर झगड़ने लगे। स्वामी जी ने अपने कुर्ते की बांहें चढ़ायीं और उनकी गरदन पकड़कर बोले - चुपचाप बैठ जाओ, अन्यथा गाड़ी से बाहर फेंक दूंगा। तुम दोनों के लिए मैं अकेला ही काफी हूँ।

स्वामी जी की मजबूत भुजाएं देखकर दोनों का गुस्सा ठंडा हो गया। अगला स्टेशन आने पर वे उतरकर दूसरे डब्बे में जा बैठे।

सत्य सदा सम्मानित होता है

आजकल सर्वत्र राजनीति का बोलबाला है। राजनेता हर काम को वोटों के हानि-लाभ से तोलकर करते हैं। वे इस डर से सच नहीं बोलते कि इससे कोई वर्ग नाराज न हो जाये। श्री गुरुजी का विचार था कि ऐसी ढुलमुल भाषा बोलने वाले कुछ समय तक तो लाभ उठा सकते हैं; पर सच बोलने वालों का सदा सम्मान होता है। वे अपने साथ का एक प्रसंग सुनाते थे।

एक बार उन्हें रेल से थोड़ी दूर जाना था। जब रेल आयी, तो वे एक डिब्बे में चले गये। वहां मुस्लिम लीग के एक प्रसिद्ध नेता सीट पर अपना बिस्तर लगाये बैठे थे। उन्होंने बड़े आदर से अपना बिस्तर साफ किया और गुरुजी को बैठा लिया।

उनके साथियों ने आश्चर्य से उनकी ओर देखा। एक ने पूछ ही लिया - संघ वाले तो हमारे कट्टर विरोधी हैं। फिर भी आप उनके मुखिया को इतना आदर दे रहे हैं।

मुस्लिम नेता ने कहा - हां, ये हमारे विरोधी हैं, पर ये अपनी बात हमेशा साफ-साफ कहते हैं। राजनेताओं की तरह बात को घुमा-फिरा कर नहीं बोलते। इसलिए इनसे हमें कभी धोखा नहीं होगा। जबकि वे राजनेता जो आज वोट के लालच में हमारा समर्थन कर रहे हैं, कल वोट के लिए हमारे विरोधी भी बन सकते हैं। □

मातृ शक्ति

असम के जोरहाट नगर में आयोजित विश्व हिन्दू परिषद् के अधिवेशन में दिनांक २८ मार्च, १९७० को सम्पन्न महिला सम्मेलन को उद्‌बोधित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, ''जब कुरुक्षेत्र में युद्ध को जाने के लिए सब लोग सिद्ध हो गए तब माता का आशीर्वाद मांगने के लिए धर्मराज युधिष्ठिर और अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव पांचो पाण्डव एक साथ पहुंचे। कुन्ती ने कहा कि यह धर्म-युद्ध है। क्षत्रिय माता इसलिए सन्तान को जन्म देती है।

यदर्थं क्षत्रिया सूते, तस्य कालोऽयमागतः।
न हि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः।। (महाभारत उद्योग पर्व)

अर्थात् जिस कारण क्षत्रणियां पुत्र को जन्म देती हैं वह समय आ गया है। वैर प्राप्त होने पर पुरुषश्रेष्ठ हतोत्साह नहीं होते।

ऐसे समय में माताओं को निर्भीक होकर वीरोचित वृत्ति से अपने धर्म तथा सत्कर्म का पालन करो, इस प्रकार की प्रेरणा देनी चाहिए।

- श्री गुरुजी

श्री गुरुजी का जीवन पट

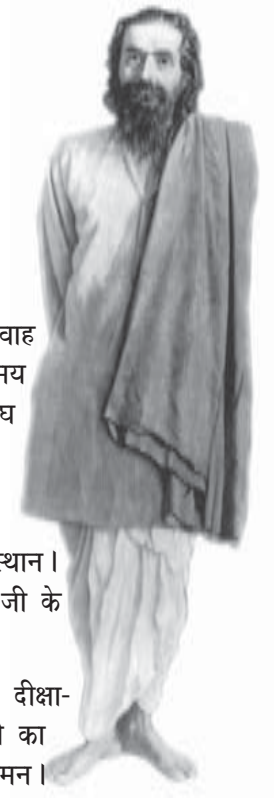

१९०६	१९ फरवरी (सोमवार माघ वद्य ११ शक १८२७) प्रातः ४-३४ पर नागपुर में जन्म।
१९२४	इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण, अंग्रेजी विषय में प्रथम पारितोषिक। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश।
१९२६	बी. एस सी. उत्तीर्ण।
१९२८	एम. एस सी. उत्तीर्ण।
१९२९	मद्रास के मत्स्यालय में अनुसन्धान।
१९३१	संघ प्रवेश।
१९३१-३३	बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक।
१९३४	नागपुर की तुलसीबाग संघशाखा के कार्यवाह पद पर नियुक्ति। संघकार्य के लिए कुछ समय मुम्बई में वास्तव्य। अकोला (विदर्भ) संघ शिक्षा वर्ग में सर्वाधिकारी।
१९३५	एल-एल.बी. उत्तीर्ण।
१९३६	दिवाली के पूर्व सारगाछी (बंगाल) को प्रस्थान। रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष श्री अखण्डानन्द जी के सान्निध्य में।
१९३७	१३ जनवरी, मकर संक्रमण पर्व के दिन दीक्षा-ग्रहण। ७ फरवरी को श्री अखण्डानन्द जी का महानिर्वाण। मार्च के अन्त में नागपुर पुनरागमन।
१९३८	नागपुर में संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी।
१९३९	१३ अगस्त को रक्षाबन्धन पर सरकार्यवाह पद पर नियुक्ति।
	२२ मार्च, को संघकार्य के लिए कलकत्ता प्रस्थान। वर्ष प्रतिपदा पर संघशाखा का शुभारम्भ।
१९४०	२१ जून, पू. डॉक्टर हेडगेवार जी की मृत्यु। ३ जुलाई, सरसंघचालक पद पर नियुक्ति।

१९४७	१२ सितम्बर, गृहमन्त्री सरदार पटेल और महात्मा गाँधी से भंट।
	१७-१९ अक्टूबर श्रीनगर (कश्मीर) में महाराजा हरिसिंह से भेंट। प्रधानमंत्री नेहरू से भेंट।
१९४८	१ फरवरी को नागपुर में गिरफ्तारी।
	४ फरवरी, शासन द्वारा संघ पर प्रतिबन्ध।
१९४९	२१ जनवरी, सत्याग्रह स्थगित। श्री ग. वि. केतकर और श्री टी.आर.वी. शास्त्री द्वारा मध्यस्थता।
	१२ जुलाई, संघ पर से प्रतिबन्ध हटा।
	१३ जुलाई, बैतूल कारागृह से बिना शर्त मुक्ति, नागपुर आगमन।
१९५२	गोहत्या निरोध आन्दोलन।
	७ दिसम्बर, लगभग २ करोड़ हस्ताक्षरों का निवेदन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को समर्पित।
१९५४	२१ जुलाई, पिताजी का निधन।
१९५६	इक्यावनवीं वर्षगाँठ, देश भर में समारोह।
१९६२	१२ अगस्त, माताजी की मृत्यु।
१९६४	कृष्ण जन्माष्टमी पर मुम्बई के सन्दीपनी आश्रम में विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना।
१९६५	६ दिसम्बर, भारत-पाक युद्ध। प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा आमन्त्रित राष्ट्रीय नेताओं की बैठक में योगदान।
१९७२	२० अगस्त को दिल्ली में ''दीनदयाल शोध संस्थान'' का उद्घाटन।
१९७३	२४-२५ मार्च, नागपुर में अ. भा. प्रतिनिधि सभा की बैठक। विजय ही विजय है, यह अन्तिम भाषण।
	५ जून रात्रि ९.०५ पर महानिर्वाण।
	६ जून सायंकाल, रेशमबाग में अन्त्य संस्कार। □

अनेक आयामों में श्री गुरुजी द्वारा प्रवर्तित कतिपय अखिल भारतीय संस्थान

राष्ट्रधर्म प्रकाशन	१९४७
अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्	१९४९
हिंदुस्थान समाचार	१९४९
वनवासी कल्याण आश्रम	१९५२
विद्या भारती	१९५२
भारतीय जनसंघ	१९५२
भारतीय मजदूर संघ	१९५५
जनता सहकारी बैंक	१९५५
भारत विकास परिषद	१९६३
विश्व हिंदू परिषद्	१९६४
अखिल भारतीय साहित्य परिषद्	१९६६
भारतीय शिक्षण मंडल	१९६९
विवेकानन्द शिला स्मारक	१९७०
दीनदयाल शोध संस्थान	१९७२
भारतीय इतिहास संकलन समिति	१९७३

श्री गुरुजी द्वारा प्रवर्तित परंपरा में आगे चलकर स्थापित संस्थान

अखिल भारतीय ग्राहक पंचायत	१९७४
भारतीय किसान संघ	१९७९
संस्कार भारती	१९८१
सहकार भारती	१९८५
राष्ट्रीय सिक्ख संगत	१९८६
प्रज्ञा भारती	१९८७
अखिल भारतीय अधिवक्ता परिषद्	१९९०
एवं अन्य अनेक संस्थान	

श्री गुरुजी के प्रति समर्पित उद्‌गार

मेरा गुरु भाई - आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत उच्च कोटि के अधिकारी परम श्रद्धेय अखंडानंद जी और भारत माता तथा उसकी कोटि-कोटि संतानों की निरपेक्ष सेवा में रत श्रेष्ठ कर्मयोगी परम पूजनीय डाक्टर जी - इन दोनों का अलौकिक मार्गदर्शन तथा आधार श्री गुरुजी के संपूर्ण जीवन में स्पष्ट रूप से दिखता है।

स्वामी विवेकानंद जी की उस उक्ति की याद आती है 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, अतिथिदेवो भव के साथ आर्तदेवो भव, दरिद्रदेवो भव'। इस भाव से समाज के प्रत्येक मनुष्य के पास जाना चाहिए, उसकी परमेश्वरभाव से पूजा करनी चाहिए। श्री गुरुजी ने अपने जीवन में इस विचार को पूर्णरूपेण चरितार्थ किया। आध्यात्मिक क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ आधार बनाकर उन्होंने संपूर्ण समाज की 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद्' इस परमेश्वर भाव से पूजा की और इसी भाव से 'समाज को उपास्य देवता मानकर संघ का कार्य करो' ऐसा मौलिक विचार उन्होंने स्वयंसेवकों को प्रदान किया।

- स्वामी अमूर्तानंद, श्री गुरुजी के ज्येष्ठ गुरुभाई

आध्यात्मिक विभूति - पूज्य श्री गुरुजी तपस्वी थे। उनका संपूर्ण जीवन तपोमय था। हमारे यहाँ सब आदर्शों में बड़ा आदर्श है त्याग का आदर्श। वे तो त्याग की साक्षात् मूर्ति ही थे। पूज्य महात्मा जी और उनसे पूर्व जन्में देश के महापुरुषों की परंपरा में ही पूज्य गुरुजी का भी जीवन था। देश की इतनी बड़ी संस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके एकमात्र नेता श्री गुरुजी। उन्होंने सादगी का आदर्श नहीं छोड़ा, क्योंकि वे जानते थे कि सादगी का आदर्श छोड़ने का स्पष्ट अर्थ है, दूसरे सहस्रों गरीबों के मुँह की रोटी छीन लेना।

श्री पूज्य गुरुजी कर्मठता के मूर्तिमान रूप थे। कर्मठता की कमी है देश में। गुरुजी ने अपने जीवन में कर्मठता का जो आदर्श रखा है, वह अनुकरणीय है। समय-समय पर मेरा संघ के स्वयंसेवकों के साथ संबंध आता रहा है। अकाल के समय संघ के स्वयंसेवकों ने जो कार्य किया, वह 'अपूर्व' था। मैं जब भी उसका स्मरण करता हूँ, श्रद्धावनत हो जाता हूँ।

श्री गुरुजी आध्यात्मिक विभूति थे। यह एक बड़ा बोध है कि हम भारतीय हैं, हमारी हजारों वर्ष पुरानी परंपरा है, भारत का निर्माण भारतीय आधार पर ही होगा। चाहे हम कितने ही 'माडर्न' क्यों न हो जाएँ, हम अमरीकी, फ्रेंच, इंग्लिश, जर्मन नहीं कहला सकते, हम भारतीय ही रहेंगे - यह 'बोध', जिसे सहस्रों नवयुवकों

में जगाया था पूज्य गुरुजी ने। मैं आशा करता हूँ कि श्री बाला साहब देवरस पूज्य गुरुजी की परंपरा को निभाएँगे।

- लोकनायक जयप्रकाश नारायण

समष्टिमय जीवन - संघ के सरसंघचालक बनने पर श्री गुरुजी ने कहा था कि 'यह तो विक्रमादित्य का आसन है, इस पर बैठकर गडरिये का लड़का भी न्याय करेगा।' विनय के साथ उन्होंने अपनी तुलना गडरिये के लड़के से की। किंतु कोई यह समझने की भूल नहीं कर सकता कि उनकी अप्रतिम महत्ता सिंहासन के कारण नहीं, अपितु उनके अपने विक्रम के कारण है। हाँ, उन्होंने अपनी संपूर्ण शक्ति और विक्रम को संघ के साथ एकरूप कर दिया और वही है उनके जीवन का लक्ष्य और उनकी महानता का रहस्य।

अपने संपूर्ण जीवन को संघ के साथ एकरूप करने का कहीं आदर्श मिल सकता है तो वह परम पूजनीय श्री गुरूजी के जीवन में। किसी ध्येय तथा कार्य के साथ तादात्म्य सरल नहीं और विशेष कर उस व्यक्ति के लिए, जो उस संस्था का सर्वप्रथम नेता हो। यदि किसी अन्य व्यक्ति के सम्मुख व्यष्टि और समष्टि में संघर्ष आ जाए या दिशा का संभ्रम उपस्थित हो जाए, तो वह समष्टि की भावनाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं के प्रतीक अपने नेता की आज्ञा को सर्वमान्य कर चल सकता है, उसका मार्ग सरल है। किंतु जिस व्यक्ति के ऊपर संपूर्ण कार्य के नेतृत्व की जम्मेदारी हो, वह अपनी अंतरात्मा को छोड़कर और किससे प्रेरणा ले सकता है? जनतंत्र की प्रचलित पद्धतियाँ वहाँ निरुपयोगी सिद्ध होगी। उनसे समष्टि की भावना और उसके हिताहित का पता नहीं चलता। सत्य न तो अनेक असत्यों अथवा अर्ध सत्यों का औसत है और न उनका योग। फिर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही तो संपूर्ण समष्टि नहीं, वह तो समष्टि का एक बिंदु मात्र है। उन्हें तो संपूर्ण समाज का विचार करना होता है।

पूजनीय गुरुजी ने समष्टि का हित ही अपने सम्मुख रखकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संचालन किया। कई बार वे लोग, जो या तो उन्हें समझ नहीं पाते अथवा समष्टिहित की अपेक्षा किसी छोटे हित को सम्मुख रख कर संघ की गतिविधि का संचालन चाहते हैं, वे श्री गुरूजी की दृढ़ता और सिद्धांतों का आग्रह देखकर उन्हें अधिनायकवादी कह देते हैं, किंतु वे उस मनोवृत्ति से कोसों दूर हैं। उनका अपना मत कुछ नहीं, संघ का मत ही उनका मत है और उनका मत ही संघ का मत होता है, क्योंकि उन्होंने पूर्ण तादात्म्य का अनुभव किया है।

ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब व्यक्ति और संस्था की प्रतिष्ठा की चिंता न करते हुए उन्होंने राष्ट्र के हितों को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। सन् १९४८ में जब

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगा, उस समय यदि वे चाहते तो शासन की खुली अवज्ञा करके अपनी शक्ति का परिचय दे सकते थे, किंतु उन्होंने संघ के कार्य का विसर्जन करके अपनी देशभक्ति का परिचय दिया। प्रतिबंध उठने के पश्चात् स्थान-स्थान पर उनका भव्य स्वागत हुआ। दिल्ली में रामलीला मैदान पर जो सभा हुई, उसका आदि और अंत नहीं दिखता था। बड़े से बड़े संत के अहंकार को जगा देने के लिए वह दृश्य पर्याप्त था। जब श्री गुरूजी बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने कहा - 'यदि अपना दाँत जीभ काट ले तो मुक्का मारकर वह दाँत नहीं तोड़ा जाता।' लोग चकित रह गए। उन्होंने आशा की थी कि श्री गुरुजी सरकार के अत्याचारों और अन्याय की निंदा करते हुए खूब खरी-खोटी सुनाएँगे। किंतु उस महापुरुष की गहराई को वे नाप नहीं पाए। वहाँ तो सबके लिए आत्मीयता ही है।

यह आत्मीयता ही उनकी महानता और उनके प्रति व्यापक श्रद्धा का कारण है और उनकी महानता इसमें है कि वे इस आत्मीयता को लेकर चल सके हैं। गत वर्ष 'धर्मयुग' साप्ताहिक ने भारत के अनेक महापुरुषों के जीवन के ध्येयवाक्य छापे थे। पूजनीय श्री गुरुजी का ध्येयवाक्य सबसे छोटा किंतु समर्पक था - 'मैं नहीं, तू ही।' इन चार शब्दों में श्री गुरूजी का संपूर्ण जीवन समाया हुआ है। यह 'तू' कौन है? संघ, समाज, ईश्वर - वे तीनों को एकरूप करके चलते हैं। तीनों की सेवा में विरोध नहीं, विसंगति नहीं। 'एकहि साधे सब सधे' के अनुसार वे संघ की साधना करके सबकी साधना में लगे हुए हैं। उनका जीवन ही साधना बन गया है।

- पं. दीनदयाल उपाध्याय

मूलगामी दृष्टि **-** श्री गुरुजी के सान्निध्य में जो भी आता था, गुरुजी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था।

बात शायद सन् १९४६ या १९४७ की है। काशी के डी.ए.वी. कॉलेज में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का शिक्षण शिविर लगा था। स्व. डॉ. संपूर्णानंद जी से मेरे बहुत पहले से संबंध थे। वे इस शिविर के समापन समारोह में पधारे। श्री गुरुजी भी थे। उस समय तो उनसे (डॉ. संपूर्णानंद से) बातचीत नहीं हो सकी, पर बाद में उनसे मिलने का संयोग हुआ तो वे बोले - 'हम तुम्हारे संघ को देख आए हैं।'

मैंने कहा - 'मैं भी वहाँ था।

वे बोले - 'हाँ, तुम उस दिन मिलिट्री कमान्डर जैसे लग रहे थे।'

मैंने पूछा - 'क्या आपको हमारे कामंडर बनने में कुछ एतराज है?'

उन्होंने जवाब दिया - 'नहीं भाई, ऐसी कोई बात नहीं। मैं तो कह रहा था कि तुम्हारे यहाँ बड़ा गजब का अनुशासन है। इस संगठन के पीछे जो तुम्हारे गुरुजी हैं,

उनका बड़ा विशिष्ट व्यक्तित्व, बड़ी डायनेमिक और डोमिनेटिंग पर्सनेलिटी है। मतभेद की बात दिखने के बाद भी उनसे विवाद करने की इच्छा नहीं होती। उनसे मिलकर एक आश्चर्य की बात अनुभव हुई कि विवादास्पद विषय का पूर्ण अनुमान कर गुरुजी ऐसा मत प्रकट करते थे कि सामने बैठे व्यक्ति को एक नये ढँग से सोचने के लिए प्रेरणा मिल जाती है।

महाराष्ट्र के राज्यपाल पद से निवृत्त होकर श्रीप्रकाश जी देहरादून में एक कुटिया बनाकर रह रहे थे। उन्होंने मुझे मिलने के लिए बुलाया। बाद में पता चला कि डॉ. संपूर्णानन्द ने उन्हें लिखा था कि तुम नाना जी को मिलो। गुरुजी की 'बंच ऑफ थॉट्स' पुस्तक को अवश्य पढ़ो। डॉ. संपूर्णानंद जी ने ही मेरा परिचय श्रीप्रकाश जी से कराया था। उनकी इच्छा देख मैंने 'बंच ऑफ थॉट्स' उन्हें भी भेज दी।

जब मेरा श्रीप्रकाश से साक्षात्कार हुआ तो वे बोले - मैं गुरुजी के व्यक्तित्व से प्रभावित अवश्य था, किंतु उनका व्यक्तित्व इतना सर्वव्यापी है, इसकी मुझे कल्पना नहीं थी। हो सकता है, कुछ मामलों में मतभेद हो, पर उनका चिंतन बड़ा मौलिक और जड़ को छूने वाला है। इसका आप लोग व्यापक प्रचार क्यों नहीं करते? कई चीजें तो ऐसी हैं, जिनको व्यवहार में लाया गया तो हिंदुस्थान की सब समस्याएँ हल हो जाएँगी। मैं नहीं समझता था कि तुम्हारे गुरुजी धर्म परिवर्तन किए बिना मुसलमान और ईसाइयों को राष्ट्रजीवन का अंग मानने के लिए तैयार हो सकते हैं। गुरुजी के सारे विचार देखकर लगता है कि यदि मुसलमानों ने थोड़ा-सा भी दृष्टिकोण में परिवर्तन किया और हिंदुस्थान की गौरवमयी राष्ट्रीय परंपरा का अभिमान रखा, तो तुम्हारे गुरुजी को उन्हें राष्ट्रीय एकात्मता के अंग मानने में कोई एतराज नहीं होगा। यह एक बहुत बड़ी बात मैं गुरूजी की समझ पाया हूँ। गुरुजी के उस विचार से मतभेद नहीं रखा जा सकता। मेरे मन में उनके प्रति आदर बढ़ गया है।

- नानाजी देशमुख, ग्राम विकास के पुरोधा

जागरुक दूरदर्शिता **-** राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक माननीय श्री गुरुजी तेजस्वी, दूरदर्शी तथा तपस्वी राष्ट्रनेता थे। उनका व्यक्तित्व चमत्कारी तथा कृतित्व प्रेरणादायक था। उन्होंने संघ के सरसंघचालक के रूप में पूरे ३३ वर्षों तक हिंदू समाज व राष्ट्र की जो सेवा की वह भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी। भारत विभाजन के दौरान श्री गुरूजी के तेजस्वी व कुशल नेतृत्व में संघ के स्वयंसेवकों ने पंजाब, दिल्ली में जान पर खेलकर भी लाखों निरीह नर-नारियों की आततायियों से जिस प्रकार रक्षा की तथा दिल्ली व अन्य नगरों को अराष्ट्रीय तत्त्वों के षड्यंत्र से ध्वस्त होने से बचाया, उससे संघ के राष्ट्रप्रेम व साहस का ज्वलंत प्रमाण मिलता है। दिल्ली को आग में स्वाहा होने से बचाने का श्रेय श्री वसंतराव ओक तथा अन्य स्वयंसेवकों को है, यह सरदार पटेल तक ने स्वीकार किया था।

श्री गुरुजी से भेंट करने, उनके साथ भोजन करने तथा उनके हास्य-विनोद में शामिल होने का मुझे अनेक बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी विनम्रता, निरहंकारिता, स्नेह तथा तपस्वी जीवन बरबस ही दूसरे को अपना बना लेने की अपूर्व क्षमता रखते थे। उनके ऋषियों जैसे व्यक्तित्व में एक अजीब आकर्षण था तथा उनके दर्शन करते ही बरबस सिर श्रद्धा से उनके चरणों में झुक जाता था। बड़े-बड़े नेताओं से लेकर प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री तक को मैंने उनके समक्ष नतमस्तक होते स्वयं अपनी आँखों से देखा था।

सन् १९६५ में पाकिस्तान के आक्रमण के समय प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने पहली बार भेदभाव को त्याग कर सभी राष्ट्रवादी दलों के नेताओं को राष्ट्र पर आए संकट के मुकाबले में सहयोग व सुझाव देने के लिए आमंत्रित कर एक स्वस्थ परंपरा का शुभारंभ किया। उस बैठक में श्री गुरुजी को भी आमंत्रित किया गया तो कम्युनिस्टों तथा अन्य तत्त्वों ने बवेला मचाने का भरसक प्रयास किया, किंतु श्री लालबहादुर जी ने स्पष्ट रूप से यह कह कर कि सबकी राष्ट्रभक्ति असंदिग्ध है, विरोध करनेवालों का मुँह बंद कर दिया था।

उस बैठक में मुझे श्री गुरुजी में तेजस्वी व राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत व्यक्तित्व की झलक देखने को मिली थी। श्री अन्नादुराई के प्रेरक भाषण के बाद श्री गुरुजी ने केवल चंद शब्दों में उपस्थित सभी नेताओं को स्तब्ध कर दिया था। उन्होंने कहा था -

''जब देश के विभाजन के समय अंधकार की घटाएँ छाई हुई थीं, तब संघ ने राष्ट्र व समाज की रक्षा के रूप में दीपक जलाकर उस घोर अंधकार में प्रकाश की किरणें फैलाने का प्रयास क्या था। अनेक स्वयंसेवकों ने अपने प्राण देकर भी समाजबंधुओं के प्राणों की रक्षा की थी। आज हम पुनः राष्ट्र पर हुए आक्रमण के प्रतिकार के लिए जी जान से तत्पर हैं। जिस मोर्चे पर खड़ा होने को कोई उद्यत न हो, उसपर मैं और स्वयंसेवक आपको तैयार खड़े मिलेंगे।''

उनके उपर्युक्त वाक्य सुनकर उपस्थित सभी नेताओं के हृदय आशा व प्रेरणा से फूल उठे थे। मैंने देखा कि श्री लालबहादुर शास्त्री जी स्वयं उस तपस्वी नेता के अंतःकरण के उन उद्‌गारों को सुनकर फूले न समाए थे। इसके बाद संघ के स्वयंसेवकों ने जिस प्रकार युद्ध में सहयोग दिया, ट्रैफिक व्यवस्था से लेकर रक्तदान तक में बढ़-चढ़कर भाग लिया, वह किसी से छिपा नहीं है।

सन् १९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया था, उसी दौरान एक दिन मुझे श्री गुरुजी से भेंट का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री गुरुजी देश के पहले नेता थे, जिन्होंने आक्रमण से पूर्व ही चीन के आक्रमण की चेतावनी देश को दे दी थी तथा भारत को सैनिक दृष्टि से तेजी से तैयारी करने का आह्वान किया था।

- प्रकाशवीर शास्त्री, राजनेता

वास्तविक संन्यासी - ऐसे युगपुरुष कभी-कभी ही प्रादुर्भूत होते हैं। वे जिस कुल में प्रकट होते हैं, उस कुल को पावन बना जाते है। जिन माता-पिता से पैदा होते हैं, उन्हें कृतार्थ कर जाते हैं। वह वसुंधरा परम भाग्यवती बन जाती है, जहाँ पर वे प्रकट होते हैं। वे किसी एक देश के, किसी एक जाति के नही होते, वे संसार की एक सार्वजनिक निधि होते है। हमारे गोलवलकरजी ऐसे ही महापुरुषों में थे। ऐसे पुण्यश्लोक पुरुष अवनि के अद्वितीय आभूषण होते हैं। गोलवलकर जी धर्मात्मा थे। वे सतत् मानवधर्म का पालन करते थे, नित्य नियम से सन्ध्यावंदन किया करते थे, धर्म के जो धृतिक्षमादि दश लक्षण हैं, उनका वे सहज भाव से पालन करते थे।

पद, प्रतिष्ठा, पैसा, प्रमदा तथा कीर्ति जो लोकधर्म तथा जैव धर्म है, उनसे वे बड़ी सावधान से बचे रहते थे। हम लोग जो अपने को साधु-संत कहते हैं, गृहत्यागी होने पर भी मठ, मंदिर, आश्रम, पैसा, प्रतिष्ठा के चंगुल में किसी-न-किसी प्रकार फँसे ही रहते हैं। किंतु वे घर में रहते हुए भी इन सबसे सर्वथा दूर ही बने रहते थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक बनकर सतत् इस संस्था की सेवा में संलग्न रहते, किंतु उस संस्था के प्रति उनको मोह नहीं था। मोह तो उनको किसी से नहीं था। किसी ने एक लक्ष रुपए उन्हें दिए और कह दिया - 'आप इसे चाहे जिस कार्य में व्यय कर दें।' यद्यपि संघ उस समय आर्थिक संकट में था, किंतु उन्होंने कहा - 'अमुक स्वामी जी की संस्था को आर्थिक सहायता की आवश्यकता है, उन्होंने एक बार मुझसे कहा था, ये रुपए उन्ही की संस्था में लगा दिए जाएँ।'

कभी एक पैसा रखना नहीं, किसी से याचना नहीं, कोई संग्रह नहीं। एक कमंडलु, एक वस्त्र - यही उनका संग्रह था। परिव्राजक संन्यासी की भाँति पूरे भारतवर्ष की एक वर्ष में दो परिक्रमाएँ करते रहना, यही तीस वर्षों तक उनका व्यापार था। संन्यासी की भाँति जिसके घर ठहरे, जो भी, जैसा भी भोजन मिल गया, उसी पर निर्वाह। मान, प्रतिष्ठा, प्रशंसा से बहुत दूर। एक दिन मुझसे बोले - 'महाराजजी, लोग समझते हैं कि मैं राष्ट्रपति बनने के लिए ऐसा संगठन कर रहा हूँ। मैं तो जीवन में कोई पद स्वीकार करनेवाला नहीं, ऐसा ही फक्कड़ बना रहूँगा।' सो वे जैसे संघ में प्रविष्ट हुए, वैसे के वैसे ही चले गए। जैसी चादर ओढ़ी थी, उसे बिना मैली किए उतारकर रख गए।

- संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रवास और पत्र-लेखन का विश्व विक्रम - मेरा यह अहोभाग्य रहा कि मेरा संघ के दो महापुरुषों - संघ निर्माता डॉ. हेडगेवार तथा उनके पश्चात् अपने पूजनीय श्री गुरुजी के साथ बड़ा निकट का संबंध रहा। डाक्टर जी के समय छोटी आयु के कारण मेरी समझ कम थी तथा उनके सहवास में मेरा गठन हो रहा था। मेरे समान ही मेरे

अन्य साथियों, जो आज भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रमुख के नाते कार्य कर रहे हैं, की स्थिति थी। जब पूजनीय गुरूजी के साथ हमारा संबंध आया, तब हम डाक्टर जी द्वारा गढ़े जा चुके थे।

देश के विभाजन तथा संघ पर प्रतिबंध के समय उनकी क्षमावृत्ति और उग्रवृत्ति दोनों का अनुभव मैंने स्वयं किया है। नवंबर १९४७ से जनवरी १९४८ तक, अर्थात् संघ पर प्रतिबंध लगने तक मुझे श्री गुरुजी के साथ दौरा करने का अवसर मिला था। विभाजन के कारण हिंदुओं पर जो संकट आया था उसमें संघ स्वयंसेवकों ने अपने बंधुओं को बचाने में जो साहस प्रकट किया था, उसके कारण श्री गुरुजी जहाँ भी जाते वहाँ लाखों लोग उनका भाषण सुनने के लिए एकत्र हुआ करते थे। लाखों लोगों का सभाओं में आना, उनका श्रद्धा से नतमस्तक होना देखकर दूसरा कोई व्यक्ति होता तो अहंकार से फूल उठता। श्री गुरुजी के मन में विभाजन की पीड़ा थी, अपने भाषण में उसकी वे आलोचना भी करते थे। फिर भी वे लोगों को क्रोध न करने तथा संतुलन न खोने का परामर्श देते थे। मुंबई की महती सभा में उन्होंने जो भाषण दिया वह चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने वहाँ कहा था कि बाहरी आक्रमण के समय 'वयं पंचाधिकं शतम् (हम एक सौ पाँच) हैं'।

परंतु जब शासनकर्ताओं ने बिना कारण संघ पर प्रतिबंध लगाया, तब उन्होंने शासनकर्ताओं के प्रति कड़ा रुख अपनाया था। प्रतिबंध काल में सहस्रों स्वयंसेवकों ने सत्याग्रह कर कारावास स्वीकार किया। श्री गुरुजी को भी बंदी बनाया गया। संघ पर लगाई गई पाबंदी के विषय में उन्होंने सरकार का कड़े शब्दों में निषेध किया। गृहमंत्रालय के एक अधिकारी ने श्री व्यंकटराम शास्त्री के निकट जो उन दिनों संघ और सरकार के बीच मध्यस्थता कर रहे थे, कहा भी था कि पूजनीय गुरुजी के पत्रों की भाषा बहुत कड़ी रहती है। इस पर श्री व्यंकटराम शास्त्री ने एक वक्तव्य देते हुए उन्हें उत्तर दिया था -

Mr. M.S. Golwalkar is a blunt man, innocent of the etiquette requried in a correspondence with Government. The soft word that turneth away wrath is not among his gifts."

गुरुजी क्रोध का शमन करनेवाली मधुर भाषा नहीं जानते थे, ऐसा नहीं था। परंतु संघ की प्रतिष्ठा रखने के लिए उन्होंने उस समय अत्यंत कड़ा रुख अपनाया था।

उनकी कार्यपद्धति की अनेक विशेषताएँ हैं। प्रतिबंध काल और कैन्सर के आपरेशन के बाद का ३-४ मास का समय छोड़ दें तो लगभग ३२ वर्ष लगातार प्रतिवर्ष एक बार संघ शिक्षा वर्ग के निमित्त और दूसरी बार प्रांतशः कार्यक्रमों के निमित्त संपूर्ण देश का प्रवास करते रहे। उनका अंतिम प्रवास मार्च के मध्य में

समाप्त हुआ और उसके ढाई महीने बाद उनकी मृत्यु हुई। उनके जैसा अपने देश का इतना विस्तृत दौरा विश्व के किसी भी व्यक्ति ने नहीं किया होगा। इस दौरे में किसी न किसी व्यक्ति के घर में ठहरा करते थे तथा उस घर के सभी व्यक्तियों को अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से आकर्षित कर लेते थे। इस प्रकार इनका संबंध लाखों परिवारों के छोटे-बड़े व्यक्तियों से आया तथा वे श्री गुरुजी को अपने परिवार का ही एक निकट व्यक्ति मानने लगे थे। श्री गुरुजी उनके संबंध की पूर्ण जानकारी रखते थे और दुबारा भेंट होने पर प्रत्येक के विषय में नाम लेकर जानकारी पूछते थे। उनकी मृत्यु के बाद जो शोक-संवेदना पत्र यहाँ आए हैं, उनमें कइयों ने लिखा है कि हम पुनः अनाथ हो गए हैं। जैसा उनका प्रत्यक्ष संपर्क अद्‌भुत था, वैसा उनका पत्रव्यवहार भी था।

श्री गुरुजी स्वयं पत्र लिखते थे। आसपास मिलने आए हुए स्वयंसेवक बैठे हुए हैं, वार्तालाप चल रहा है, हास्य विनोद हो रहा है, और उसी बीच गुरुजी पत्र लिखते जा रहे है, यह दृश्य सबके लिए परिचित था। प्रतिदिन पाँच पत्र के हिसाब से पूरे ३३ वर्षो में उन्होंने कितने पत्र लिखे होंगे इसका गणित करें तो आश्चर्यचकित होना पड़ेगा। पत्र लिखने का भी यह एक 'विश्व-विक्रम' (World-Record) हुआ कहना पड़ेगा।

अपनी विशिष्ट कार्य पद्धति के द्वारा उन्होंने संघकार्य का आज का स्वरूप खड़ा किया है। डाक्टर जी ने संघकार्य की आधारशिला रखी और श्री गुरुजी ने प्रासाद खड़ा किया। वे संघकार्य रूपी प्रासाद के शिल्पी थे। अनेक संकटों में से उन्होंने संघकार्य को बढ़ाया। संकटों के सामने वे विचलित नहीं हुए, जैसा एक संस्कृत सुभाषितकार ने कहा है कि -

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तसमये तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।।

जिस प्रकार उदय तथा अस्त के समय सूर्य का रक्तवर्ण एक-सा रहता है, वैसे ही महापुरुष संपत्ति और विपत्ति में एकरूप रहते हैं। उसी प्रकार श्री गुरुजी का व्यवहार अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में एक-सा रहा।

- बालासाहब देवरस, तृतीय सरसंघचालक

व्यक्तिपूजा नहीं, राष्ट्रपूजा **-** हमने श्री गुरुजी के मुँह से ही सुना है कि यौवन की गंध से भरपूर पूरा खिला हुआ जीवनपुष्प ही मातृभूमि के चरणों पर चढ़ा कर हमें आराधना करनी चाहिए। हमने उनके मुँह से यह भी सुना है कि आयु का क्षण-क्षण तथा शक्ति का कण-कण लगा कर कार्य करें और सब कुछ राष्ट्रकार्य में अर्पित कर गन्ने को निचोड़ने के बाद जिस प्रकार छूछा बचा रहता है, उस प्रकार शरीर छोड़

दें। सन् १९४० में उनके सरसंघचालक बनने के बाद विगत ३३ वर्षों में संगठन पर कितनी ही आपत्तियाँ आई, अंग्रेजों के शासन की कुटिल चालों और अपने ही देश के कर्णधारों की अज्ञानतापूर्ण दुर्नीतियों के कारण विकट परिस्थितियाँ निर्माण हुईं, परंतु श्री गुरुजी के नेतृत्व में हिंदूराष्ट्र के निर्माण का यह कार्य अबाध गति से आगे ही बढ़ता गया।

श्री गुरुजी ने हम सभी स्वयंसेवकों को संबोधित कर जो पत्र लिख छोड़े हैं, उनमें भी यही बात निहित है। उन्होंनें लिखा हे कि 'अपना कार्य राष्ट्रपूजक है, व्यक्ति-पूजा को उसमें स्थान नहीं है।' श्री गुरुजी ने यह वाक्य लिखकर इसी बात का स्मरण दिलाया है कि हम राष्ट्र के लिए समर्पित व्यक्तित्व वाले लोग हैं।

- माधवराव मुल्ये, सरकार्यवाह

अनामिक पथिक **-** अपने जीवन में उन्होंने इतने सारे कार्य किए कि उनकी गिनती ही संभव नहीं। कार्य का प्रभाव भी इतना प्रचंड है कि इस कार्य का भावी युग में क्या परिणाम होगा, कार्य का फल कितना भव्य होगा, इसका निश्चित अनुमान करना इतिहास के बड़े-बड़े अध्ययनकर्ताओं के लिए भी असंभव सा है। कार्य की गिनती करना कठिन और महत्ता बताना भी कठिन। प्रत्येक कार्य इस तोल का है कि उस एक कार्य करनेवाले का जीवन भी धन्य हो जाए।

अपने जाने के बाद अपने पीछे कीर्ति की पताका फहराती रहे, यह आकांक्षा बड़े-बड़े कर्तृत्ववान पुरुषों की रहती है। यह आकांक्षा उनके कर्तृत्व की गरिमा के अनुसार ही होती है, पर अपना श्राद्ध भी अपने ही हाथों से करनेवाला यह केशधारी संन्यासी निरहंकार के उत्तुंग हिमालयतुल्य शुभ्र शिखर पर ऐसी लीनता से खड़ा रहा कि आसपास उफन रही अहंकार की मैली-मटमैली लहरों के कल्लोल की एक बूँद भी, उसके चरण तो दूर रहे, पर वह जहाँ खड़ा था, उस पर्वत को भी स्पर्श नहीं कर पाई।

वंशपरंपरागत संपत्ति, घर जैसी स्थावर बातें, एक प्रकार का स्मारक होता है। पर अपनी ऐसी जो कुछ भी मालमत्ता पिता द्वारा अर्जित थी, जो पैसा आदि था, वह भी वे समर्पित कर चुके थे। तो उस प्रकार के स्मृतिचिह्न भी रखने का प्रश्न नहीं था।

अपने आखिरी पत्र में उन्होंने यह कहा कि उनका कोई स्मारक नहीं बनाया जाए। उसी प्रकार स्मृति रखने के विषय में एक विशेष बात भी कही। स्वयंसेवकों को ही देवता संबोधित कर उन्होंने 'करा छाया कृपेची' यह नम्र हृदय से संत तुकाराम के शब्दों में उन्होंने कहा -

अंतिम ये प्रार्थना, संतजन सुनें सभी,
विस्मरण न हो मेरा, आपको प्रभो कभी।
अधिक और क्या कहूँ, विदित सभी श्री चरणों को।
तुका कहे पैरों पड़ूँ, करे कृपा की छाँह को।।

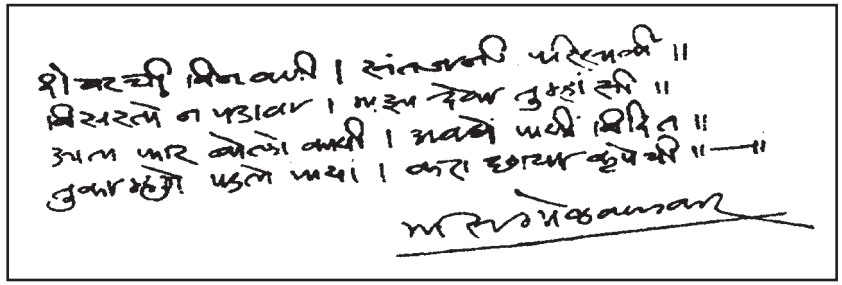

अलेक्जेंडर पोप की कविता की चार पंक्तियाँ वे हमेशा उद्धृत किया करते थे। वे हैं -

Thus let me live unseen unknown
Unlamented let me die
Steal from the world and not a stone
Tell where I lie.

- मोरोपंत पिंगले

अनोखे भावविश्व में **-** पूज्य श्री प्रभुदत्तजी की बड़ी इच्छा थी कि श्री गुरुजी एक बार श्री बदरीनाथ धाम चलें। इस इच्छा के अनुसार यात्रा कार्यक्रम बनने में बड़ा सहारा मिला। श्री गुरुजी के गुरुभाई स्वामी अमूर्तानंदजी भी कई बार बदरी-केदार की यात्रा का कार्यक्रम बनाने के लिए कह चुके थे। पर श्री गुरुजी भला वहाँ क्योंकर जाने लगे?

तब हमने श्री महाराज जी से निवेदन किया कि शास्त्र की कोई बात बताकर वे इसके लिए श्री गुरुजी को मनाएँ।

पहाड़ों पर सर्दी बहुत पड़ती है और श्री गुरुजी धोती छोड़कर अन्य कुछ पहनते नहीं। मैं श्री गुरुजी के लिए सूती बुना हुआ एक नया पाजामा लेता गया था, जो धोती के नीचे पहना जा सकता है। यह इसलिए कि सर्दी में श्री गुरुजी को कष्ट न हो, परंतु श्री गुरुजी ने उसका प्रयोग कभी नहीं किया। मोजों और जूते की भी व्यवस्था की थी, परंतु उसका भी उपयोग श्री गुरुजी ने नहीं किया। मेरे अतिशय आग्रह करने पर उन्होंने उत्तर दिया कि 'पहाड़ पर अनेकों व्यक्ति शीत-निवारक वस्त्र के बिना काम चलाते हैं, तो मुझे सर्दी से बचने के लिए इतने वस्त्रों की क्या

आवश्यकता है? श्री गुरुजी को चाय पीने का चाव तो अवश्य है, पर कई वर्षों से उन्होंने चाय के साथ कुछ खाना छोड़ दिया था। न तो सायंकाल भोजन करते थे और न रात्रि में दूध लेते थे। दिन भर में केवल एक बार भोजन और वह भी अत्यल्प करते थे। हम लोगों को बड़ी चिंता थी कि वह अल्प आहार पहाड़ की सर्दी से बचने के लिए कैसे पर्याप्त शक्ति और उष्णता प्रदान कर पाएगा। लेकिन पूरे प्रवास में श्री गुरूजी का वही पूर्ववत् एक बार भोजन का तथा शुद्ध चाय का प्रयोग बना रहा।

इन्हीं दिनों श्री महाराज जी के श्रीमुख से भागवत कथा सुनने का अवसर श्री गुरुजी को प्राप्त हुआ। दोपहर को तीन बजे से घंटे-डेढ़ घंटे उनकी रसमयी वाणी से कथा-श्रवण का आनंद हम सभी को प्राप्त होता था। श्री महाराज जी कथा इतनी तन्मयता के साथ कहते, प्रसंगों का वर्णन इतना रोचक होता, पात्रों की भाव-भावनाएँ इतनी सुंदर रीति से व्यक्ति होतीं कि सुनने वाले उस कथा गंगा में पूर्णतः बह जाते। प्रेमाश्रु-पूर्ण नेत्रों से श्री गुरुजी भी उस कथा को सुनते थे। श्री महाराज जी नित्य श्रीकृष्ण-चरित्र की कथा सुनाया करते थे। प्रसंग था भ्रमर-गीत का। श्री गुरुजी की भाव-विभोरता को देखकर श्री महाराज जी ने बाद में कहा - 'अब तक तो मैं उन्हें एक सामाजिक नेता के रूप में समझता था, किंतु भगवत्कथा के समय मैं जान पाया कि वे तो नारियल की भाँति हैं। नारियल जो ऊपर से तो दृढ़ कठोर दिखलाई देता है, पर जिसके भीतर स्वच्छ निर्मल नीर परिपूर्ण रूप से भरा रहता है। जितनी देव वे कथा सुनते, उनकी आँखों से रह-रह कर अश्रु प्रवाहित होते रहते थे।

- रज्जू भैया, चतुर्थ सरसंघचालक

नेता हो तो ऐसा - सितंबर १९४७ के दिन थे। पंजाब में भीषण बाढ़ आई हुई थी। परमपूजनीय श्री गुरुजी को जालंधर से फगवाड़ा के कार्यक्रम में शामिल होने के लिए जाना था।

जालंधर के पास नदी में भीषण बाढ़ के कारण रेलवे पुल के बीच के खंबे बह गए थे तथा रेल पटरियाँ केवल इधर-उधर के दो आधारों पर लटकी हुई थीं। जालंधर से नदी पार करने का और कोई मार्ग था ही नहीं। लटकी हुई रेल पटरी को पार करना खतरे से खाली नहीं था।

श्री गुरुजी फगवाड़ा के कार्यक्रम में पहुँचने को दृढ़ संकल्प थे। उन्हें खतरे के नाम पर रोका नहीं जा सकता था।

हमने योजना बनाई कि सबसे आगे मैं रहूँगा, बीच में श्री गुरुजी तथा पीछे अन्य व्यक्ति - इस प्रकार सतर्कता से स्लीपरों पर पैर रखते हुए उसे पार कर लेंगे।

जैसे ही पुल पर पहुँचे कि श्री गुरुजी तेजी से आगे बढ़कर हम सबसे आगे हो लिए। हमारी योजना धरी की धरी रह गई। नाम मात्र को लटकी हुई रेल पटरी के स्लीपरों पर वे निर्भीकता के साथ अपने चरण बढ़ाते हुए पार हो गए। मुझे तब तक जान में जान नहीं आई, जब तब वे सकुशल पार नहीं पहुँच गए।

किसी भी कार्यक्रम में समय पर पहुँचना तथा बड़े से बड़े खतरे का स्वयं आगे रहकर सामना करना - यह श्री गुरुजी की सदा ही प्रवृत्ति रही। किसी संकट या खतरे से भयभीत या विचलित होना तो उन्होंने सीखा ही नहीं था।

- वसंतराव ओक

एक अनजाना पहलू यह भी - पूजनीय गुरुजी को साक्षात्कार हुआ था या नहीं इस संबंध में महाराष्ट्र के एक संत श्री दत्ता बाल ने अपनी श्रद्धांजलि सभा में कहा - 'मेरे व्याख्यानों का कार्यक्रम जब नागपुर में आयोजित हुआ, तब मैंने देखा कि एक दाढ़ी-मूँछ व लंबे केशवाले सज्जन कार्यक्रम में आए हैं। मैंने अपने साथियों से पूछा कि वे कौन है? तब बताया गया कि वे गुरुजी गोलवलकर हैं। मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि मेरे मन में उनके प्रति कोई आदर का भाव नहीं था। किंतु उन्हें अपने कार्यक्रम में देखकर मुझे कौतूहल हुआ और दूसरे दिन उनसे मिलने डा. हेडगेवार भवन चला गया। उनसे एकांत में वार्तालाप में मैंने योग संबंधी कुछ प्रश्न पूछे। मैंने अनुभव किया कि वे जो उत्तर देते थे वे एक स्तर आगे के रहते थे। इस प्रकार एक-एक सीढ़ी हम ऊपर उठते गए। अंत में मैंने उनसे एक प्रश्न पूछ लिया - 'गुरुजी, क्या आपको भगवान के दर्शन हुए हैं?' उन्होंने मेरी ओर कुछ देर तक देखा और मेरा हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा कि - 'एक शर्त पर ही बताता हूँ कि किसी से कहोगे नहीं।' मेरे हाँ कहने पर उन्होंने कहा - 'हाँ, हुआ है। संघ पर लगे प्रतिबंध के समय जब मैं सिवनी जेल में था और खाट पर बैठे हुए सारे घटनाक्रम के बारे में चिंतित हो रहा था, तब मुझे लगा कि कोई मेरे कंधे को दबा रहा है। जब पलटकर ऊपर देखा तो साक्षात् जगज्जननी-माँ सामने खड़ी थीं। उन्होंने आश्वस्त करते हुए कहा - 'सब ठीक होगा'। उसी बलबूते पर तो आगे के सारे संकटों का मैं दृढ़ता के साथ सामना कर सका।" और यह सुनाते हुए भी दत्ता बाल ने कहा - 'चूंकि अब वे दिवंगत हो गए हैं, इसलिए उनको दिए गए अभिवचन से मैं मुक्त हो गया हूँ और यह बात आप सबको बता रहा हूँ।'

ऐसे एक अध्यात्म-शक्तिसंपन्न व्यक्ति के दर्शन, निर्देशन, सान्निध्य और नेतृत्व का लाभ हम सबको मिल सका, इसे अपने पूर्वजन्मों के सुकृत का ही परिणाम मानना होगा।

- कुप् सी सुदर्शन, पांचवे सरसंघचालक

पूज्य विभूति - पूजनीय गुरुजी के सहवास में कुछ काल बितानेवाले को थोड़ी देर में ही उनके अंतःकरण की प्रगाढ़ भाविकता की अनुभूती होती थी। सभी पंथोपपंथ के संत, उनका भावरम्य साहित्य, उनके तीर्थक्षेत्र, व्रत, उत्सव, मंत्र, तंत्र, देवदेवता इन सभी के प्रति उनकी पराकाष्ठा की ज्ञानपूर्ण भक्ति थी। स्वधर्म-परधर्म का भेद वह भक्ति नहीं जानती थी। हिस्लॉप कॉलेज के विद्यार्थी रहते प्रिंसिपल गार्डिनर को उन्होंने बाईबल के अपने मार्मिक ज्ञान से चकित कर दिया था। यह तो प्रसिद्ध ही है।

कुछ वर्ष पूर्व विद्यार्थी परिषद की नागपुर शाखा ने विविध धर्मों के प्रतिनिधियों का धर्मविषयक एक परिसंवाद पूजनीय गुरुजी की अध्यक्षता में आयोजित किया था। उस समय मोहम्मदी धर्ममत का प्रतिपादन करने के लिए नागपुर विभाग के बहुजन समाज का श्रद्धास्थान रहे श्री ताजुद्दीनबाबा की दरगाह के एक वृद्ध मौलवी भाषण करने आए थे। मंच पर श्री गुरुजी के निकट की कुर्सी पर ही वे विराजमान थे। कुरान के वचनों के आधार पर मोहम्मदी संप्रदाय का अंतरंग का अत्यंत मार्मिक रूप से उन्होंने प्रतिपादन किया। उनका उर्दू भाषण गुरुजी को बहुत पसंद आ रहा है, यह उनकी मुख की प्रसन्नता एवं शुचिस्मित देखकर हम श्रोताओं की समझ में आ रहा था। मौलवीजी का भाषण समाप्त होते ही गुरुजी ने अपनी हमेशा की आदत के अनुसार उनकी पीठ पर थाप देकर अपनी प्रसन्नता जाहिर की। भाषणों का दौर समाप्त होने पर सभी के साथ चाय के समय गुरुजी ने मौलवीजी की पुनः प्रशंसा की। उन्होंने कहा - 'ताजुद्दीनबाबा की दरगाह पर बचपन में मैं कई बार दर्शन के लिए आ चुका हूँ।' श्री गुरुजी के साथ हमेशा रहने वालों के लिए यह जानकारी नयी थी। मौलवी जी के चेहरे पर तो आश्चर्य छिप नहीं सका। व्यावसायिक राजकीय नेताओं ने श्री गुरुजी की प्रतिमा कट्टर द्वेष्टा के रूप में चित्रित करने के प्रयत्न किए होने से उन मौलवीजी का भी वैसा ही पूर्वाग्रह रहा होगा। इसीलिए श्री गुरुजी से वह अनौपचारिक वाक्य सुनते ही वे चकित रह गए।

इसी संदर्भ में एक और घटना का स्मरण आता है। नागपुर के रोटरी क्लब में श्री गुरुजी का भाषण हुआ। व्याख्यान के बाद प्रमुख श्रोताओं का परिचय कराया जा रहा था। एक तरुण मुसलमान सदस्य का परिचय कराया गया। तभी श्री गुरुजी ने उनके परिवार के चार-पाँच वरिष्ठजनों के नाम लेकर उनकी पूछताछ की। बहुत दिनों से उनकी भेंट नहीं हुई, यह कहा और भेंट का योग शीघ्र कभी हो, यह अपेक्षा भी व्यक्त की। वह तरुण तथा अन्य सारे लोग इस अनपेक्षित प्रकार से चकित रह गए।

- प्रज्ञाभारती डा. श्रीधर भास्कर वर्णेकर

भविष्य-दृष्टि - भारत माँ श्री गुरुजी के लिए चैतन्यमयी माँ के रूप में नित्य हृदय में स्थित थी। उस पर हो रही और होने वाली आपदा उनसे छिपी नहीं रह सकती

थी। उसकी प्रत्यक्ष उन्हें अनुभुति होती थी। जिस समय देश में ''हिन्दी-चीनी भाई-भाई'' के नारे लग रहे थे, उन्होंने चकित करने वाले रहस्य का उद्घाटन किया कि चीन ने अक्साईचिन और नेफा, जिसे आज अरुणाचल कहते हैं, उसकी हजारों वर्ग मील पर कब्जा और नियंत्रण ले लिया है। पहली बार भारत को यह समाचार पूज्य श्री गुरुजी से ही मिला। हम जिसे अपना भाई कह कर भारतवासियों को गुमराह कर रहे हैं वह भारत का शत्रु है, आक्रमणकारी है। उसके पश्चात् ही सरकार की आँखें खुली और संसद में श्री नेहरू जी जबाव नहीं दे सके, यह स्थिति हुई।

एक बार पुणे के संघ शिक्षा वर्ग में श्रीगुरुजी ने अचानक कहा कि श्री गुलवणि जी महाराज के यहाँ आज अपना निमन्त्रण है। श्री आबाजी थत्ते इस सोच में पड़े थे कि इस निमंत्रण की उनको तो सूचना नहीं थी, कब आया? किन्तु कुछ अधिकारियों के साथ वे श्री गुलवणि जी महाराज के यहाँ पहुंचे। प्रसाद परोसा जा रहा था और उसी समय गुलवणि महाराज ने कहा - आप सब लोगों को यह रहस्य नहीं मालूम है कि यह निमन्त्रण श्रीगुरुजी को कब दिया गया? श्री गुलवणि जी एक सिद्ध पुरुष थे। वे जब बताने लगे, तब श्रीगुरुजी ने उनको संकेत किया कि वे न बतावें किन्तु उन्होंने सबके सामने एक बड़ा रहस्य खोल दिया। उन्होंने कहा - गुरुजी कहीं भी हों, हमारी उनकी मूकवार्ता हो जाती है और उसी में ही यह निमन्त्रण श्रीगुरुजी ने स्वीकार किया था। सबके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

इसी प्रकार डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के कश्मीर में हुए बलिदान, १९६५ में प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री की ताशकन्द में संदिग्ध स्थितियों में हुई मृत्यु, ७ नवम्बर १९६६ को दिल्ली में गोहत्या बन्दी आंदोलन में पुलिस की फायरिंग के विषय में श्री गुरुजी ने पहले से चेता दिया था।

- अशोक सिंहल
अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष - विश्व हिन्दू परिषद

अद्भुत स्मरणशक्ति - एक बार किसी बात को देखा तो धारण कर लिया ऐसी श्री गुरुजी की अपूर्व धारणशक्ति थी। कितने ही स्वयंसेवक अपने अनुभव बताते हैं। राजस्थान प्रान्त का प्रवास समाप्त कर अंत में वापस जाने के लिए जोधपुर स्टेशन पर बिदाई देने स्वयंसेवक इकट्ठा हो गए थे। मण्डल बना कर गुरुजी के साथ सब खड़े थे। दूर स्टाल पर एक पागल खड़ा देखा गया। वह एकटक गुरुजी को देखने लगा। गुरुजी ने जब उसकी तरफ देखा तो भीड़ बाजू करते हुए वे उसकी तरफ बढे। उसके पास जा कर उसको कहते हैं कि अच्छा तुम मुझे कराची में मिले थे न। तुम्हारा नाम ऐसा है न। पूछने पर गुरुजी ने बताया कि विभाजन हुआ उसी अगस्त में कराची में एक कार्यक्रम था। कार्यक्रम में मंच पर चढ़ते समय बाजू में खडे

स्वयंसेवकों में से वह एक था। उसका नाम मैंने पूछा था। उसके बाद जोधपुर में पहली बार गुरुजी ने उसे पागल के रूप में देखा था। विभाजन के कारण उसे सहन करनी पड़ी सारी पीड़ा उस पगले के रोने के रूप में निकल गई।

छह वर्ष की अवस्था में श्री गुरुजी ने विष्णु सहस्त्रनाम याद कर लिया था। माताजी की सहायता करते हुए पाक कला भी सीख ली। भोजन करते-करते पिताजी से गणित सीख लिया करते थे। वे बहुत अच्छे हॉकी खिलाडी थे। मलखंब बहुत अच्छा कर लेते थे।

इस प्रकार की तीव्र स्मरणशक्ति मेरे ख्याल से केवल बुद्धि का चमत्कार नहीं है। मन में जब आत्मीयता होती है तभी स्मरणशक्ति का ऐसा उपयोग संभव है। वह एक-एक स्वयंसेवक को जानते थे, एक-एक स्वयंसेवक की व्यक्तिगत खबर रखते थे।

- मोहन भागवत, वर्तमान सरकार्यवाह

समानता नहीं वरन् सामंजस्य

मानव जीवन में धर्म के पूर्ण उदय से स्वाभाविक असमानताओं के रहते हुए भी, मानव प्राणी उच्चतम सामंजस्य में रहने की योग्यता प्राप्त करेगा। यह एक लंगड़े और अंधे के सहयोग के समान है। लंगड़े आदमी को टांग मिल जाती है और अंधे को आंख। सहयोग की भावना असमानता की कटुता दूर कर देती है। व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों का हमारा दृष्टिकोण संघर्ष का न होकर सभी व्यक्तियों में उस एक सत्य के विराजमान होने के बोध से उत्पन्न सामंजस्य और सहयोग का रहा है। व्यक्ति सामाजिक व्यक्तित्व का एक सजीव अंग होता है। व्यक्ति और समाज दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। परिणामतः दोनों ही एक दूसरे से शक्ति प्राप्त करते हुए लाभान्वित होते हैं।

- श्री गुरुजी

श्री गुरुजी के साथ बातचीत

भ्रम टूटा - मेरी कल्पना थी कि उनसे मिलते समय मुझे गणवेशधारी स्वयंसेवकों के घेरे में से गुजरना होगा, किंतु ऐसा नहीं हुआ। इतना ही नहीं, मेरी समझ थी कि मेरी कार का नम्बर नोट करने वाला कोई मुफ्ती गुप्तचर भी वहाँ होगा, पर ऐसा भी कुछ नहीं था। जहाँ वे रुके थे, वह किसी मध्यम श्रेणी के परिवार का कमरा था।

गुरु होने के कारण शिष्यवत् चरणस्पर्श की वे मुझसे अपेक्षा करते हों, इस मान्यता से मैं झुका, परंतु उन्होंने मुझे वैसा करने का अवसर ही नहीं दिया। उन्होंने मेरे हाथ पकड़े, मुझे खींचकर अपने निकट बिठा लिया और कहा - 'आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत दिनों से आपसे मिलने की इच्छा थी।' उनकी हिंदी बड़ी शुद्ध थी।

मैं समझ नहीं पा रहा था कि प्रारंभ कहाँ से करूँ। मैंने कहा - 'सुना है, आप समाचार-पत्रीय प्रसिद्धि को टालते हैं और आप का संगठन गुप्त हैं'।

'यह सत्य है कि हमें प्रसिद्धि की चाह नहीं, किंतु गुप्तता की कोई बात ही नहीं। जो चाहे पूछें', उन्होंने उत्तर दिया।

इस प्रकार विभिन्न विषयों पर परस्पर खुलकर बातचीत हुई।

मैं गुरुजी का आधे घंटे का समय ले चुका था। फिर भी उनमें किसी तरह की बेचैनी के चिह्न दिखाई नहीं दिए। मैं उनसे आज्ञा लेने लगा तो उन्होंने हाथ पकड़कर पैर छूने से मुझे रोक दिया।

'क्या मैं प्रभावित हुआ?' मैं स्वीकार करता हूँ कि - हाँ। उन्होंने मुझे अपना दृष्टिकोण स्वीकार कराने का कोई प्रयास नहीं किया, अपितु उन्होंने मेरे भीतर यह भावना निर्माण कर दी की किसी भी बात को समझने-समझाने के लिए उनका हृदय खुला हुआ है।

- खुशवंतसिंह, संपादक इलस्ट्रेटेड वीकली

विचार व व्यवहार का संयोग -

डॉ. जैनेन्द्र : 'आपके सामने से इस्लाम और मुस्लिम हट जाएगा, तो आपके आंदोलन का आधार ही समाप्त हो जाएगा।'

श्री गुरुजी : 'तुमने कैसे समझ लिया कि हमारा आंदोलन घृणा पर आधारित है। हिंदू शब्द में किसी का खंडन कहाँ है? अगर हम उसके पक्ष की बात करते हैं तो उसमें इस्लाम या मुस्लिम का विरोध देखना ठीक नहीं है। किसी स्वार्थ के कारण वैसा लांछन हम पर लगाया जाता हो तो उसका निराकरण क्या किया जाए? लेकिन

मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि हम विरोध के आधार पर नहीं खड़े हैं। हिंदू संस्कृति जो मूल में सकारवादी है, उसे फिर से पुष्ट और जागृत किया जाए। इसलिए भारत की ही नहीं, प्रत्युत मानव मात्र की रक्षा हम उसमें देखते हैं।'

राजनीति बाट डालती है। राष्ट्र को मिलाने का काम उससे नहीं हो पाएगा। जनसंघ में गुरूजी का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ खो नहीं गया। इसको मैं गोलवलकर जी की मौलिक विशेषता मानता हूँ। द्वंद्व में जो नीति रहे, वह राजनीति हो सकती है। उनका संघ रचनात्मक होगा, राजनीति नहीं। इस आग्रह को मैं उनके व्यक्तित्व का सूचक मानता हूँ।

निस्पृहता, मित्रता, निरहंकारिता किंतु उनकी दृढ़ता, संकल्पशीलता, अथक कर्म प्रवणता के उदाहरण अन्यत्र मुझे नहीं मिले। गाँधीयुग के बाद तो स्वार्थहीनता और नित्य बलिदान को प्रेरणा देनेवाले व्यक्तित्व अपवादरूप हो गए हैं। गुरुजी के गतिशील और प्रणबद्ध व्यक्तित्व के परिचय का लाभ मुझे मिला, इसको मैं अपना सद्‌भाग मानता हूँ। उनमें मैंने कभी प्रमाद नहीं देखा और जिस क्षण भी मिलना हुआ, उन्हें तत्पर और उद्यत ही पाया। इस अवसर पर मैं उनकी स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

- डॉ. जैनेंद्र, सुप्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक व साहित्यकार

उनका जीवन सूत्र :-

उनसे पूछा - 'गुरुजी, क्या आपने जीवन के कुछ सूत्र निश्चित किए थे?

मेरा प्रश्न सुनकर उन्होंने कहा - 'सूत्र! सूत्र क्या बताऊँ? पर मैंने तय कर लिया था कि प्रवाह के साथ बहते रहना।'

पूछा - 'क्या इसका अर्थ प्रवाहपतित होना है?'

उन्होंने उत्तर दिया - 'नहीं। प्रवाह के साथ बहते जाना। प्रवाह के बाहर तो जाना ही नहीं। प्रवाह में डूबना भी नहीं। प्रवाह के विरुद्ध कैसे जाना? किनारे से लगकर प्रवाह की ओर देखते नहीं रहना। भगवान ने कहा है -

कुर्याद् विद्वांस् तथासक्तशः चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्। (गीता, ३-२५) - यह मेरा जीवनसूत्र है।'

विश्व को मार्ग दिखानेवालों को तो लोक विलक्षण होना ही नहीं चाहिए। लोक संग्रह का व्रत जिन्होंने लिया है, उन्हें सर्वसाधारण से अलग नहीं होना चाहिए, न दिखलाई देना चाहिए। यह है गुरुजी के जीवन का महाकाव्य।

- दादा साहेब आप्टे, संस्थापक महामंत्री, विश्व हिंदू परिषद्

ईसाई जगत और इस्लाम का यथार्थ

लेबनॉन

इन दिनों ''ईसाई जगत् और इस्लाम'' चर्चा का विषय रहा है। इसका प्रमुख कारण लेबनॉन का यादवी युद्ध है। यह युद्ध प्रारंभ हुआ उस समय लेबनॉन में ईसाई बहुसंख्यक थे और मुस्लिम अल्पसंख्यक। किन्तु ईसाई परिवार-नियोजन के समर्थक रहे और मुस्लिम परिवार-नियोजन के विरोधक। इस कारण जनसंख्या का अनुपात बदलता गया और आज लेबनॉन मे मुस्लिम बहुसंख्यक हो गए हैं और ईसाई अल्पसंख्यक। इस घटना ने सभी देशों को चौंका दिया है। परिवार नियोजन नीति के परिणाम इतने स्पष्ट रूप से पहली ही बार सामने आए हैं।

फिलीपाईन्स

इसी तरह दुनिया को आश्चर्य चकित कर देने वाली दूसरी घटना अर्थात् फिलिपाईन्स की ईसाई सरकार और मुस्लिम ''मोरो लिबरेशन फ्रन्ट'' के बीच २३ दिसम्बर, १९७६ को हुआ समझौता हैं।

ईसाई फिलिपाइन्स में इस्लाम का प्रवेश पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ। आज उस देश की जनसंख्या साढ़े चार करोड़ है। उसमें मुस्लिम तीस लाख, याने ७ प्रतिशत से कम हैं। उनका अधिक केन्द्रीकरण दक्षिणी प्रदेशों में है। दक्षिण के मिण्डानिओं, सुलू, तावीताकी, पहडवल द्वीप, आदि क्षेत्र इसमें आते हैं। मोरो लिबरेशन फ्रन्ट अलगाववादी संगठन मुस्लिमों का नेतृत्व कर रहा है। इस सशस्त्र आन्दोलन में समय-समय पर कई उतार-चढ़ाव आए। २६ मार्च १९७८ को फ्रन्ट के उपाध्यक्ष अबुल खदार मोंटो ने अपने हजारों समर्थकों के साथ आत्मसमर्पण किया तो भी आन्दोलन और खून-खराबा चलता ही रहता है। किन्तु इस चढ़ाव-उतार की प्रक्रिया में मुस्लिमों की बलस्थान से सौदा करने की बारी सन् १९७६ के अन्तिम चरण में आई। मार्कोस सरकार उनके सामने झुकने को तैयार हो गई। इस कारण समझौता वार्ता का आयोजन हुआ, किन्तु वार्ता फिलपाईन्स में नहीं हुई। फिलिपाईन्स से हजारों मील दूर लीबिया के ट्रिपोलो नगर में हुई। और इस वार्ता के सहभागी हुए लिबिया, सऊदी अरब, सोमालिया तथा सेनेगाल। लीबिया के गद्दाफी और सऊदी अरब के फैजल ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस घटना से आन्दोलन का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट हुआ।

साइप्रस

साइप्रस में तो सीधे और खुले तौर पर ग्रीस और तुर्किस्तान की लड़ाई चल रही है। साइप्रस की कुल जनसंख्या के तीस प्रतिशत याने एक लाख मुस्लिम हैं। साइप्रस में इस्लाम का प्रवेश ५०० वर्ष पूर्व हुआ। प्रदीर्घ संघर्ष के बाद १५ नवम्बर १९८३ को वहां के मुस्लिमों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और अपने स्वतंत्र मुस्लिम देश का नामकरण ''टर्किश रिपब्लिक ऑफ नॉदर्न साइप्रस'' किया। इस घटना का श्रेय जितना इस्लाम को है उससे अधिक तुर्किस्तान की विस्तारवादी आकांक्षा को है।

बाल्कन देश

कुछ वर्ष पूर्व भारत के दो-तीन नियतकालिकों ने बल्गेरिया की मुस्लिम नीति के विषय में अद्यावत जानकारी प्रकाशित की थी। इस कारण अपने देश में बाल्कन देश और मुस्लिम समस्या के विषय में जिज्ञासा निर्माण हुई।

बालक्न देशों पर तुर्किस्तान का जो आक्रमण हुआ था वह कितनी मात्रा में इस्लाम के कारण था और कितनी मात्रा में राजनेताओं की विस्तारवादी आकांक्षाओं के कारण यह अन्वेषण का विषय है। किन्तु यह निर्विववाद है कि साम्राज्यसत्ता के निर्माण तथा दृढ़ीकरण की प्रक्रिया में सबसे प्रबल सहारा इस्लाम का है।

बल्गेरिया में तुर्किस्तान की सत्ता सन् १३८२ में आई। वह पांच सौ साल चलती रही। सन् १८७७ में उसका अन्त हुआ। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने सर्वदूर जो-जो अत्याचार किये वे सब बाल्कन देशों में भी किए गए। स्वातंत्र्य प्राप्ति के पश्चात् आशा यही थी कि देश के सभी निवासी मातृभूमि के प्रति निष्ठावान रहेंगें; किन्तु यह आशा पूरी नहीं हुई। मुसलमान होते हुए भी अपने नेशन के साथ वफादार रहकर तुर्कों के साथ लड़ने वाले अल्बानिया के स्कॅडरवेग का उदाहरण अपवाद रूप ही रहा, नियमरूप नहीं। अल्पसंख्यक इस नाते मुस्लिमों को दिए हुए विशेष अधिकारों के कारण उनमें अलगाववाद निर्माण होता है। वे अलगाव में निहित स्वार्थ देखने लगते है। ऐसा अनुभव में आने लगा। इस पृष्ठभूमि में बल्गेरिया ने निर्णय लिया कि वहां के मुस्लिमों को बल्गेरियन संस्कृति में पूर्ण रूपेण पचा लेंगे। त्यौहार, भाषा, रीतिरिवाज यहां तक कि नामकरण सब कुछ बल्गेरियन होगा, न कि तुर्की। सुन्ना पर भी प्रतिबंध लगाया गया। इस नीति का दृढ़ता से क्रियान्वयन करने के कारण बल्गेरिया के १५ लाख मुसलमानों में से पांच-छह लाख लोगों ने खुद का बल्गेरियनीकरण कर लिया और बाकी लोगों को देशत्याग करना पड़ रहा है, जिनमें कुछ ख्याति प्राप्त व्यक्ति भी हैं। मुस्लिम समस्या हल करने का यह बल्गेरियन मार्ग रहा। बल्गेरिया का मामला चल रहा था उन्हीं दिनों पश्चिम जर्मनी की मुस्लिम संबंधी कुछ जानकारी

प्रकट हुई थी। किन्तु उसे उसकी समस्या नहीं कहा जा सकता। वह विशुद्ध आर्थिक प्रश्न था। छोटे तथा हल्के कामों के लिए उन दिनों पश्चिम जर्मनी में तुर्की मुस्लिम श्रमिक कम पारिश्रमिक पर उलब्ध हो जाते थे। इस कारण जर्मनी के स्थानीय मेहनतकशों में असंतोष था और तब तुर्की मजदूरों को जर्मनी से निष्कासित किया जाए यह मांग उठी थी। किन्तु समस्या का स्वरूप सांस्कृतिक नहीं था, आर्थिक था।

वैसे भी, यूरोप के जिन देशों पर मुसलमानी आक्रमण नहीं हुआ और मुसलमानी शासन नहीं चला उनमें मुस्लिम समस्या ने गंभीर स्वरूप धारण नहीं किया।

सर्बिया ने इस समस्या का मुकाबला अपने ढंग से किया। सर्बिया आज यूगोस्लाविया का एक अंग है। तुर्किस्तान ने सर्बिया पर १४५७ में अपनी सत्ता स्थापित की। वहां की जनता बार-बार विदेशी सत्ता के विरोध में असफल विद्रोह करती रही। १७८८ के विद्रोह में उन्होंने बेलग्रेड को मुक्त करा लिया। सर्बियन नेसनलिज्म ने आक्रमणकारी तुर्की सत्ता के विरोध में निर्णायक विजय १८०६ में प्राप्त की। उसके पश्चात् तुर्की सत्ता और संस्कृति के सभी चिन्ह उन्होंने पूर्णरूपेण मिटा दिए।

हंगरी

१५२६ में तुर्किस्तान में हंगरी पर आधिपत्य जमायाः किन्तु हंगेरियन नेशनेलिज्म अखंड सक्रिय रहा। हंगरी के किसी न किसी भाग में किसी न किसी रूप में विद्रोह की प्रक्रिया चलती ही रही। अन्त में २०० साल के बाद हंगरी दास्यमुक्त हुआ।

अलबानिया

अलबानिया पर पहला तुर्की आक्रमण सन् १३८५ में हुआ। थोड़े ही समय में तुर्की की पूरी विजय हुई। अलबानिया का एक सरदारपुत्र जॉर्ज केस्ट्रिओटा को तुर्की लोग शिक्षा के निमित्त तुर्किस्तान ले गये। सन् १४४१ में उसे वापस अलबानिया भेजा गया। किन्तु उसने अलबानिया को स्वतंत्र घोषित कर दिया और तुर्को के विरुद्ध लड़ाइयां लड़ी। उसने यह स्वातंत्र्ययुद्ध २७ साल तक चलाया। वह सिकन्दर बेग नाम से प्रसिद्ध है। उसकी मृत्यु के पश्चात् स्वातंत्र्य युद्ध ठंडा पड़ा। अगले ४५० साल तक अलबानिया तुर्की के स्वामित्व में रहा। १९११ में तुर्किस्तान का विघटन आरंभ हुआ। उस समय सभी बाल्कन देशों ने तुर्किस्तान के विरुद्ध विद्रोह किए। उसी समय अलबानिया ने भी स्वातंत्र्ययुद्ध किया और सफलता प्राप्त की।

अन्य

मॉण्टेनिग्रो, बोसानिया, हर्तसेगोविना आदि इकाइयों का भी कम-अधिक प्रमाण में यही हाल रहा।

पूर्वी यूरोप में इस्लाम के नाम पर जो आक्रमण हुए उनका प्रेरणा केन्द्र तुर्किस्तान रहा। उसके सत्ताधारियों की साम्राज्य पिपासा असीम थी। उसके कारण पूर्वी यूरोप में नेशनलिज्म को बढ़ावा मिला।

किन्तु मुसलमानों का यूरोप पर सर्वप्रथम और इस्लाम की ही विशुद्ध प्रेरणा से हुआ आक्रमण पश्चिमी यूरोप के एक छोर पर था।

स्पेन

यूरोप का अफ्रीकी ओर का छोर है स्पेन। जिस तरह ७१२ ई० में बिन कासिम हिन्दुस्थान में आया उसी तरह उसी वर्ष तारिक नाम का मुसलमान सरदार मरक्का से निकलकर जिब्राल्टर पार करके स्पने में घुस गया। सैनिकी पराक्रम तथा राजनीतिक चालबाजी के सहारे आक्रमणकारी आगे बढ़ते गए। दमिश्क के खलीफा को स्पेन का सर्वेसर्वा घोषित किया गया। उत्तरी केंटाब्रियन पहाड़ी इलाके में एक छोटी लड़ाई में ईसाइयों द्वारा विजय प्राप्त करने पर ईसाइयों का हौसला बढ़ा, किन्तु पीछे हटना बराबर जारी रहा। पराजय की प्रदीर्घ रात में कोव्हाडोंगा की यह छोटी सी विजय उसको सतत् प्रेरणा देती रही।

प्रारंभ में motivation की दृष्टि से मुस्लिम श्रेष्ठ थे। क्योंकि वे पवित्र सिद्धांत के लिए लड़ रहे थे और स्पेन के लोग केवल अपने राजा के लिए - दोनों को प्राप्त होने वाली प्रेरणाओं में महदन्तर था। किन्तु बाद में उनको वांछनीय प्रेरणा स्त्रोत मिलगया। सेंट जेम्स का शव गेलीशिया के एक खेत में गाड़ा हुआ है, ऐसा सर्वत्र प्रचारित हुआ। प्रेरणा की दृष्टि से यह बात अतिप्रभावी सिद्ध हुई, क्योंकि सेंट जेम्स, ईसा मसीह के बारह शिष्यों में से एक थे। यह ख्रिस्तशिष्य हर लड़ाई में अपने साथ है, इस श्रद्धा से स्पेनिश लोग लड़ने लगे। जिस स्थान पर सेंट जेम्म की मृत देह मिली वहां सेंटियागो दा कॉपीस्टोला नगर बसाया गया। उस स्थान पर विशाल चर्च बनाया गया और उसमें जेम्स के पवित्र अवशेष रखे गए। इस घटना के बाद स्पेनिश लोगों के शस्त्र अधिक तीक्ष्ण हो गए। इस नई प्रेरणा से युक्त होकर स्पेन के लोग सात सौ साल आक्रामकों के विरुद्ध लड़ते रहे।

इसका प्रतिवाद करने की दृष्टि से आकामक मुस्लिमों ने कोर्डाबा नगर में खलीफा की गद्दी स्थापित की। वहीं के चर्च का मस्जिद में रूपान्तर किया। और वे सारे अत्याचार किए जो वे अन्यत्र करते आए थे। १२३६ में स्पेनिश लागों ने यह नगर फिर से जीत लिया और मुख्य मस्जिद को फिर से चर्च बनाया। इस विजय के कारण स्पेन के दक्षिण छोर के ग्रानाडा राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण स्पेन मुस्लिमों से मुक्त हुआ। ग्रानाडा जीतने में स्पेनिश लोगों को २५० साल लगे। स्पेन के फर्डिनांड राजा ने ग्रानाडा की मुक्ति का संग्राम सन् १४७१ में प्रांरभ किया और

सन् १५०२ में विजयश्री प्राप्त की। स्पेन पर मुस्लिम शासन कुल मिलाकर ७८० साल रहा।

सम्पूर्ण विजय प्राप्त करने के पश्चात् फर्डिनांड ने मुसलमानों के सामने तीन विकल्प रखें:-

१. वे स्पेन छोड़कर अफ्रीका चले जाएं, या

२. ईसाई मत में वापस आ जाएं, या

३. मृत्यु को स्वीकार करें।

ज्यादातर मुस्लिमों ने दूसरा विकल्प स्वीकार किया। कुछ मुस्लिमों ने पहला विकल्प मान लिया। तीसरा विकल्प अपनाने वालों की संख्या अत्यल्प रही।

उसके बाद स्पेन में ''अल्पसंख्यक'' समस्या समाप्त हो गई। यह स्पष्ट है कि ईसाई जगत की प्रकृति और भारत की संस्कृति में महदन्तर है। हमें हमारा मार्ग अपनी संस्कृति के प्रकाश में ढूंढना पड़ेगा। तो भी इसी विषय से संबंधित जागतिक जानकारी चिंतन-प्रक्रिया में सहायक हो सकती है। अनुकरण के लिए नहीं, तो स्वयं की प्रतिभा और प्रकृति के आधार पर समुचित समाधान ढूंढने की दृष्टि से। □

'राष्ट्र' पुस्तक से साभार उद्धृत

ॐ

प्रकाशक :
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
१सी, मदन मोहन बर्मन स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७
दूरभाष : ०३३ २२६८ ८२१५
ईमेल : kumarsabha@vsnl.net

संपादक :
विमल लाठ
जुगल किशोर जैथलिया

प्रथम आवृत्ति :
रक्षा बंधन
१ अगस्त, २००६
श्री गुरुजी जन्म शताब्दी वर्ष

मुद्रक :
सी. डी. सी. प्रिन्टर्स प्रा. लि.
१३, क्रुकेड लेन, तृतीय तल
कोलकाता - ७०० ०६९

मूल्य : १०/-

अनुक्रम

श्री गुरुजी का जन्म शताब्दी वर्ष	-	संपादकीय	१
शत-शत वन्दन! (कविता)	-	श्यामनारायण पाण्डेय	२
युगद्रष्टा श्री गुरुजी	-	विमल लाठ	३
श्री गुरुजी : विश्व शान्ति और राष्ट्र-अवधारणा	-	मा. गो. वैद्य	७
उनका चिन्तन सतत गतिमान था	-	डॉ. देवेन्द्र स्वरूप	११
श्री गुरुजी और शैक्षणिक प्रबोधन	-	संकलन : लज्जाराम तोमर	१३
राजनीतिक व्यवस्था : श्री गुरुजी के विचार	-	डॉ. गौरीनाथ रस्तोगी	१९
हिन्दू-मुस्लिम सामञ्जस्य की आधार भूमि	-	डॉ. सैफुद्दीन जीलानी	२७
सही पहचान	-	श्री गुरुजी	३६
एकमेव साधना : राष्ट्र साधना	-	श्री गुरुजी	४१
प्रेरक घटनाएं	-	श्री गुरुजी	४५
श्री गुरुजी का जीवन पट			४८
अनेक आयामों में श्री गुरुजी द्वारा प्रवर्तित कतिपय अखिल भारतीय संस्थान			५०
श्री गुरुजी के प्रति समर्पित उद्‌गार			५१
श्री गुरुजी के साथ बातचीत			६६
ईसाई जगत और इस्लाम का यथार्थ	-	परिशिष्ट	६८

संदर्भ सामग्री

पुस्तक / Book

1.	Bunch of Thoughts : M S Golwalkar	Sahitya Sindhu Prakashan 14/3, Nrupatunga Road, Bangalore - 560 001
2.	Third Way : Dattopant Thengadi	-Do-
3.	विचार नवनीत : मा. स. गोलवलकर	ज्ञान गंगा प्रकाशन बी 19, न्यू कॉलोनी, जयपुर - 302 001
4.	श्री गुरुजी समग्र दर्शन : 7 खंड	डॉ. हेडगेवार भवन, महाल नागपुर - 440 002 वितरक : सुरुचि प्रकाशन, देशबंधु गुप्ता मार्ग झंडेवाला, नई दिल्ली - 110 005
5.	श्री गुरुजी समग्र : 12 खंड	सुरुचि प्रकाशन, देशबंधु गुप्ता मार्ग झंडेवाला, नई दिल्ली - 110 005
6.	पत्ररूप श्री गुरुजी	भारतीय विचार साधना, नागपुर
7.	श्री गुरुजी जीवन प्रसंग, संकलन कर्ता : राधेश्याम बंका	लोकहित प्रकाशन, राजेन्द्र नगर पूर्व, लखनऊ - 4
8.	**राष्ट्र संपादक : भानुप्रताप शुक्ल संकलन : डॉ. गौरीनाथ रस्तोगी**	**भारतीय मजदूर संघ तिलक गली, चूना मंडी पहाड़गंज, नई दिल्ली-११० ०५५**
9.	**कल्पवृक्ष संकलन-संपादन : भानु प्रताप शुक्ल**	-Do-
10.	RSS : Kee O Keno (Bengali) : Ashok Dasgupta (Why RSS and What it is ?)	Shree Prakashan 26, Bidhan Sarani, Kolkata - 700 006
11.	RSS : A vision in Action Compiled by H.V. Sheshadri	Rashtrotthan Sahitya Kempegowda Nagar Bangalore - 560 019
12.	Third Way – Dattopant Thengadi	Sahitya Sindhu Prakashan 14/3, A Nrupatunga Road Bangalore - 560001
13.	Spot Lights M. S. Golwalkar	-Do-
14.	Shri Guruji - A Visionary	Shree Kumar Sabha Pustakalaya Kolkata

अन्य पुस्तक एवं पुस्तिकाएं प्राप्य / Books & Booklets available at

Suruchi Prakashan, Jhandewalan, Desh Bandhu Gupta Marg, New Delhi - 110 055
Ph : 011 2351 4372

साप्ताहिक पत्र / Journals

Organiser Weekly (English)	Sanskriti Bhavan
पांचजन्य साप्ताहिक (हिन्दी) and many special issues	Deshbandhu Gupta Marg Jhandewala, New Delhi 110 055

Websites

http://www.shriguruji.org
http://www.rss.org
http://www.golwalkarguriji.org
http://www.hindubooks.org
http://www.bharatvani.org
http://www.hvk.org